जीवन विद्या : एक परिचय

ए. नागराज

श्री भजनाश्रम, अमरकंटक,

जिला अनूपपुर, म.प्र. (भारत) - 484886

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन

प्रकाशक :
जीवन विद्या प्रकाशन
दिव्यपथ संस्थान
अमरकंटक, जिला अनूपपुर - 484886 म.प्र. भारत

प्रणेता एवं लेखक :
ए. नागराज
सर्वाधिकार प्रणेता एवं लेखक के पास सुरक्षित

संस्करण :
पूर्व संस्करण : 1999, 2001, 2008, 2010
मुद्रण : जनवरी 2017

सहयोग राशि :120/-

जानकारी :
Website : www.madhyasth-darshan.info
Email : info@madhyasth-darshn.info

सदुपयोग नीति :
यह प्रकाशन, सर्वशुभ के अर्थ में है और इसका कोई व्यापारिक उद्देश्य नहीं है। इसका उपयोग एवं नकल, निजी अध्ययन के लिए उपलब्ध है। इसके अलावा किसी भी अर्थ में प्रयोग (नकल, मुद्रण आदि) करने के लिए 'दिव्यपथ संस्थान' अमरकंटक, जिला अनूपपुर (म.प्र.), भारत - 484886, से पूर्व में लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है। यह अपेक्षित है कि इन अवधारणों को दूसरी जगह प्रयोग करते समय इस ग्रन्थ का पूर्ण उद्धरण (संदर्भ) दिया जायेगा।

Good Use Policy :
This publication is for 'Universal Good' and has no commercial intent. It may be used and copied for personal study purposes. Any use (copy, reproduction, etc.) for any other purpose other than stated has to b compulsorily authorized beforehand in writing by 'Divya Path Sansthan'. Amarkantak, Anuppur, 484886 (India). It is expected that you provide the full reference of this book when using these concepts elsewhere.

भूमिका

मानव इस धरती पर कब आया है यह निश्चित नहीं है। मानव है कि नहीं है ? इस बात पर कोई शंका नहीं होती; क्योंकि मानव होने का हम लोग जीवित प्रमाण हैं । पर मानव क्या है? इस बात का हमें आज तक पता नहीं था । स्वयं को खोजते हुए, जानने का प्रयास करते हुए मानव को सदियाँ बीत गयी है । अपने ही आंतरिक स्वरूप को देखने, समझने के लिए मानव तरस गया है । अपने परिचय को जानने के लिए मानव तृषित है और हजारों वर्षों से प्रयासरत भी है । आज दुनिया में रासायनिक तथा भौतिक शोधों के ढेर लगे हैं किन्तु मानव के बारे में अभी तक पता नहीं है अर्थात् मानव का अध्ययन नहीं हो पाया ।

ए. नागराज हमारे जैसे ही एक व्यक्ति हैं; वे अमरकंटक की एकान्तवादियों में जो भारत का सुप्रसिद्ध तीर्थ, नर्मदा नदी का उद्गम स्थल, मेंकल पर्वत की हरी-भरी गोद में मानव के स्वरूप को खोजने चले आये। मैसूर प्रांत के अपने हरे-भरे गांव अग्रहार को छोड़कर श्री नागराज जिन्हें अब बाबाजी कहते हैं कुछ प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने आये थे । घोर जंगल, घोर शीत, वर्षा, जंगली जानवर, भोजन की व्यवस्था नहीं और तमाम असुविधाओं में जीकर वे अनुसंधान करते रहे। भारत के सुप्रसिद्ध श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य श्री चंद्रशेखर भारती द्वारा दीक्षित श्री नागराज जी परंपरानुसार विधियों से तप करते रहे । अपने अनुसंधान के क्रम में उनको समाधि की स्थिति प्राप्त हुई । किन्तु अपने प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलने के कारण उन्होंने ''संयम'' किया । संयम करने पर बाबाजी को पूरा सह-अस्तित्व समझ में आ गया । सह-अस्तित्व में शरीर व जीवन के संयुक्त रूप में मानव भी समझ में आ गया, अस्तित्व में व्यापक सत्ता जिसे हम ईश्वर सत्य ब्रह्म आदि नामों से पुकारते हैं उसी में जड़-चैतन्य प्रकृति होना अनुभव हो गया । अस्तित्व में संपूर्ण व्यवस्था समझ में आ गयी । उन्होंने देखा कि संपूर्ण प्रकृति सत्ता में (परमात्मा में) डूबी है, भीगी है, घिरी है ।

सन् 1976 से अपने अनुभव को उन्होनें अपने पास आने वाले लोगों को बताना शुरू किया । इसी क्रम में उनके पास एक ओर देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिक, डॉ. सी. व्ही. रमन, परमाणु आयोग के अध्यक्ष डा. भाभा जैसे लोग भी आये तो दूसरी ओर साधारण अनपढ़ कहे जाने वाले ग्रामीण भी आये । उन्होंने सत्य को कहना शुरू किया । जीवन की सच्चाइयाँ जो उनके श्रीमुख से निःसृत हुई उनको कुछ लोगों ने समझकर ''जीवन विद्या'' के नाम से शिविरों में अध्ययन कराना प्रारंभ किया है । हम लोगों ने बाबाजी से आग्रह किया कि वे अस्तित्व को, जीवन को जैसा समझे हैं, अपने श्रीमुख से बोलें ताकि एक प्रामाणिक दस्तावेज मानव जाति के लिए उपलब्ध रहे। तब बाबाजी ने मध्यप्रदेश के बस्तर क्षेत्र में चारामा के पास आंवरी आश्रम में जीवन विद्या को तीन दिनों तक प्रस्तुत किया ।

इस प्रस्तुति की वीडियो रिकार्डिंग की गयी तथा सब तक यह बात पहुँच सके इस क्रम में बाबाजी के उद्‌बोधन को ज्यों का त्यों पुस्तकाकार में छाप दिया जाए, ऐसा सभी मित्रों ने सोचा । इस प्रयोजन को ध्यान में रखकर बाबाजी का 'जीवन विद्या' पर उद्‌बोधन पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत है । आज इस पुस्तक को मानव जाति को सौंपते हुए हम सभी लोग अतीव प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। यह पुस्तक मानव को स्वयं के बारे में, अस्तित्व के बारे में भ्रम को दूर करने में उपयोगी होगी - इसी आशा, विश्वास के साथ ।

राजन शर्मा
नंदिनी नगर (दुर्ग)

फागुन पूर्णिमा
2 मार्च, 1999

अनुक्रमणिका

1.	जीवन विद्या : एक परिचय	1-22
2.	जीवन विद्या	23-48
3.	जीवन का स्वरूप	49-86
4.	प्रश्न-उत्तर	87-121

जीवन विद्या : एक परिचय

मानव बंधुओं ! मैं अपने में से ही स्वेच्छापूर्वक विगत वैदिक वांड्मयों को सुना हूँ । इसमें और किसी का दबाव नहीं रहा । समझने के बाद मेरी एक कामना हुई । कैसा होना चाहिए इस धरती पर मानव ? उसके लिए मैं अपने में ही एक उद्गार पाया वह है ''भूमि स्वर्ग हो, मानव देवता हो ! धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो ।''

भूमि स्वर्गताम् यातु, मनुष्यो यातु देवताम् ।
धर्मो सफलताम् यातु, नित्यम् यातु शुभोदयम् ।।

ये कैसे उद्गमित हुआ इसकी पृष्ठभूमि मैं आपके सम्मुख रखना चाहता हूँ। यह शरीर यात्रा एक परिश्रमी, सेवाकारी, वैदिक धर्मपरायण, आर्यश्रेयवादी परिवार में प्रारंभ हुई। यह तो आप सबको विदित है कि हर मानव संतान किसी ना किसी माँ की कोख से पैदा होता है; किसी ना किसी धर्म को मानने वाला होता ही है; किसी ना किसी राज्य संविधान को स्वीकारा ही रहता है। परंपरा में प्राप्त शिक्षा में अर्पित होता ही है और शिक्षाविदों के अनुसार चलकर देखता है । यह आज तक की परंपरा की बात रही । उसी विधि से मैं भी जहां से शुरू किया, जिस परिवार में शुरू किया इसी सबसे गुजरने लगा । इसके साथ रूढ़िगत परंपरा की बातें इसके साथ बैठो, इनके साथ नहीं बैठो, ये करो, ये ना करो ये सब बातें जबसे शुरूआत की है इन रूढ़ियों से हमारा मन भरा नहीं । ये बचपन की ही बात हैं। पहले-पहले ये बचपन की बात है (बच्चा है) ऐसा बुजुर्ग लोग भी सोचते रहे । कुछ दिनों बाद वे लोग भी बदलने लगे । दृष्टियाँ, मुद्रा, भंगिमा, त्यौरी सब बदलने लगे । मुझे लगा हमारे बुजुर्ग मुझसे प्रसन्न नहीं है। प्रश्न का पहला कारण हमारा ये बना। किन्तु प्रसन्न भी कैसे किया जाए भाई ! जैसा ये कहे वैसा ही करें तो भी हम कसौटी लगाने लगे। सब दिन सब समय ये प्रसन्न नहीं रहते हैं ? ऐसा मुझको दिखा है। मुख्य बात यहाँ से है । जब मुझको ये लगने लगा कि हमारे बुजुर्ग हमको ऐसा करो वैसा नहीं करो कहते हैं वैसा खुद करते हैं या नहीं करते

है किन्तु सब दिन सब समय प्रसन्न नहीं है। जबकि उनसे ज्यादा आर्यश्रेय, वाङ्मय के विद्वानों को कहीं पाया नहीं जा सकता। ऐसे सब सिद्धियाँ होने के बाद हम हमारे में ये निर्णय कर लिया, किसी भी विधि से रूढ़ियों को तो मानना ही नहीं । यह एक प्रकार से प्रतिज्ञा होने लगी और दूसरा कारण जुड़ गया कि हमारे बुजुर्ग हमको समझा नहीं पाते थे। कुल मिलाकर जितनी बार वे विफल होते गये उतनी ही हमारी अहंता बढ़ती गयी । ये हमारा अहंता बढ़ने की बात और रूढ़ियों से ना जुड़ने की बात यह सब एक साथ ही चल दिया। इस क्रम से चलकर हम क्या करते ? अब बड़े बुजुर्ग यह दावा करने लगे कि यह वेद को समझा नहीं है, वेदांत को समझा नहीं है, शास्त्र को समझा नहीं है। यह अपने आप में स्वयंभू के रूप में हर रूढ़ियों को हर बात को, नकारता है यह कहाँ तक ठीक है ? इस मुद्दे पर चिंता करने लगे। यह हमारे लिए दूसरे प्रश्न का कारण बना। मैं अब क्या करता ? अब कोई दूसरा रास्ता नहीं रहा तो मैं आर्ष ग्रन्थों के अनुसार वेदान्त को समझा। जिन्हें वे सर्वोपरि मानते थे।

पहला भूमि है वेदान्त, अर्थात माने गये वैदिक विचार का कर्म। वैदिक विचार के अनुसार कर्म उस चीज को मानते हैं जिससे स्वर्ग मिलता है बाकी सबको और कुछ कहते हैं । उपासना उसको कहते हैं जिसमें इन्द्र या अन्य देवी देवता बनना हो, इसके लिए जो उपक्रम है उसे वेद-उपासना कहते हैं । तीसरे शीर्ष भाग में यह कहते हैं कि ज्ञान ही सर्वोपरि है । ज्ञान क्या है ? पूछा तो ब्रह्मज्ञान । ब्रह्म क्या चीज है ? पूछा तो तुम समझोगे नहीं । समझेंगे नहीं तो हम कैसे पार पायेंगे ? बुजुर्गों ने जो कहा है, 'करो, ना करो' इसी विधि से पार पायेंगे। क्या करें ? क्या होगा ? यह तुमको समाधि में मिलेगा। समाधि से सारे प्रश्नों का उत्तर मिलता है ये आश्वासन हमको बुजुर्गों से मिला । इस आधार पर मैंने अपने मन को सुदृढ़ किया कि कुछ भी हो एक बार समाधि की स्थिति को देखना ही है और कोई बात बनती ही नहीं है । ना हमारा कोई दावा का मतलब है, ना करने का भी कोई मतलब नहीं है, करो का भी कोई मतलब ना ही है । एक बार हमें अपने प्रश्नों का उत्तर मिलना चाहिए। वेदान्त को भली प्रकार सुनने

के बाद पहले तो ये प्रश्न बना :- बंधन और मोक्ष क्या है मायावश हम बंधन में रहते हैं ऐसा वे कहते हैं । मोक्ष माने आत्मा का ब्रह्म में विलय होने को कहते हैं। आत्मा कहाँ से आया ? तो बोलते हैं-जीवों के हृदय में ब्रह्म स्वयं आत्मा के रूप में निवास करता है । जब जीव मुक्त होने के लिए अर्थात् आवागमन से यानि स्वर्ग-नरक से मुक्त होने के लिए आत्मा का ब्रह्म में विलय होना ही है, तो यह ब्रह्म जीवों के हृदय में आत्मा के रूप में क्यों बैठ गया ? पहले जब जीव हुआ था उस समय में उनमें कोई आत्मा नहीं था फिर ब्रह्म को उसके अंदर घुसने की क्या जरूरत थी ? ऐसा हमारा वितण्डावाद जैसा हुआ । क्योंकि हम बुजुर्गों की ध्वनि से ध्वनि नहीं मिलाया इसलिये हमें वितण्डावादी नाम दिया। हमने कहा आप लोग जो समझते हैं वह ठीक है किन्तु इसका उत्तर तो आप प्रस्तुत करोगे । परन्तु इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला। उसके बाद यही कहा गया कि इसका उत्तर भी तुम्हें समाधि में ही मिलेगा । अब क्या करें ? समाधि के लिये तत्पर होने के लिये हम शनैः-शनैः तैयार हुये। हमारा मन धीरे-धीरे बनता रहा। इस तरह सन् 1944 से शुरूआत हुई और सन् 1946 तक हम समाधि के लिये तत्पर हो गये । उस समय और एक स्थिति बनी देश में स्वराज्य आयेगा इसकी संभावना बलवती हुई। सन् 1947 की बात है जैसा कि हम लोग आशा करते थे सत्ता का हस्तान्तरण हुआ । उसमें भी बहुत बड़े चिंतनशील थे, बुजुर्ग थे, विचारशील थे उनकी बातों को सुनते रहे और उनमें भी व्यतिरेक आई सफलता के दिन तक । उसमें भी हम पीड़ित हुये । उसके बाद और एक आशा लगी अब हमारा एक संविधान बनेगा। उसमें शायद सही मानव के मूल्यांकन की व्यवस्था रहेगी । मैं अपने तरफ से, स्वयं स्फूर्त विधि से सोचता रहा कि संविधान से कहीं न कहीं मार्गदर्शन मिलेगा।

संविधान की जब रचना हुई तब इस संबंध में अखबारों में जो लेखा-जोखा आता रहा उसको मैं ध्यान से सुनता रहा और समझने की कोशिश करता रहा । सन् 1950 तक की सारी बातें सुनकर हमारे मन में आया कि इस संविधान के तले सही मानव का मूल्यांकन नहीं हो सकता । इसका आधार यह बना कि सही

मानव का कोई चरित्र ही इसमें व्याख्यायित नहीं है जिसको हम राष्ट्रीय चरित्र कह सकें। अब क्या किया जाये ? पहले से संकट था ही, वेदांत और समाधि, समाधि में ही सब उत्तर मिलना है । इस प्रश्न को भी उसी से जोड़ लिया । समाधि में ही इसका भी उत्तर मिलेगा जिसमें किसी बड़े बुजुर्ग के साथ या विद्वानों के साथ तर्क करने की आवश्यकता नहीं है । मिलता होगा तो सबका जवाब मिलेगा, नहीं मिलता है तो यह शरीर यात्रा बोध के लिए अर्पित है ऐसा हम अपने में निर्णय लिया । इसके लिए एक व्यक्ति और तैयार हो गयी वह है मेरी धर्मपत्नी । हम अमरकंटक को एक ऐसी स्थली, प्राण-स्थली, नर्मदा जी का उद्गम स्थली है ये सब सुनते ही थे । उस पावन विचार के आधार पर क्यों न वहीं जाकर यह अंतिम प्रयत्न किया जाए ऐसा सोचकर हम अमरकंटक आ गये । यहाँ आकर हम आगम तंत्रोपासना विधि से साधना करने लगे । इस विधि में समाधि का एक तरीका बताया गया है, जिसमें सारे देवी देवताओं को अपने ही शरीर के हर भाग में देखने की बात है। अपने ही कल्पना से देखने की बात है। उनकी पूजा पाठ करने की बात है। ऐसे ही अपने शरीर के अंग-प्रत्यंगों में जो कुछ भी कल्पना करते हैं ये देवता है वो देवता है इस क्रिया का नाम दिया है ''न्यास'' । इसके मूल में यह सूत्र दिया है 'देवोभूत्वा देवान् यजेत्' अर्थात् तुम स्वयं देवरूप होकर देवताओं की अराधना करो। ये बात मुझको बतायी गयी थी । उसके साथ उसी प्रकार से ईमानदारी से करने के लिए हम तत्पर हुए। उसमें जैसा बन पड़ता था वैसा करता रहा। करते-करते एक दिन ऐसा आया कि हम देवी देवताओं से, के सान्निध्य से मुक्त हो गये। ''मैं हूँ'' इसका बोध था। हमारे पास और कोई विचार नहीं था।

हमको कोई चीज पाना है इसका कोई विचार नहीं था, हमारे पास कोई चीज है यह भी विचार नहीं था, हमको कुछ करना है यह भी विचार नहीं था। एक नयी बात, छोटी सी बात यह घटना हुई । इस घटना होने के कुछ घंटों तक यही स्थिति रही। उसके बाद जैसे ही हमें शरीर का बोध हुआ, समय का बोध हुआ । तब हमको पता चला कि इन तीनों का हमें बोध नहीं रहा था । हमारे

पास विचार ही नहीं था । ऐसा मुझको मुझमें विश्वास हुआ। ये होने के बाद मैं सोचने लगा कि मुझे समाधि की स्थिति आ गयी। उस समाधि की स्थिति को हर दिन दोहराता रहा । कई घंटों तक दोहराता रहा और प्रतीक्षा करता रहा हमारे प्रश्नों का उत्तर अब मिलेगा, अब मिलेगा किन्तु वर्षों प्रतीक्षा करने के बाद भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला । यह दूसरी विफलता आई । अब क्या करें ? वेदांत को समझने से उत्तर नहीं मिला, समाधि के बाद उत्तर नहीं मिला, हमारे परिवार में ही जो सर्वोपरि विद्वान है वो भी कुछ बता नहीं पाते हैं ? अब कहाँ जायें ? अब किसी पर आरोप लगाने की जगह ही नहीं रहा इस शिकंजे में हम अपने ढंग से रहे । एक दिन ऐसा लगा कि हम वाकई में समाधि की बात सुना था, हमको यह विश्वास भी हो गया कि समाधि हो गया, किन्तु समाधि यही है इसको हम कैसे दूसरों को बता पायेंगे। इसको हम सुदृढ़ कैसे माने प्रमाण क्या माने ? इसमें बताने की कोई चीज ही नहीं है तो हम प्रमाण कैसे प्रस्तुत करेंगे । यह जिज्ञासा गहराया तो हमको समाधि हुआ कि नहीं इसको आजमाने के लिए हमने संयम नाम की एक क्रिया किया। ये भी सलाह पूर्वजों से मिली थी । ये पातंजली योगसूत्र में उल्लेखित है उसमें लिखा है 'धारणा ध्यान समाधि त्रयमेकत्रत्वातात् संयमाः।' इसको कोई भी मेधावी व्यक्ति पढ़कर देख सकता है । जो संयम के बारे में कुछ भी लिखा है हमको स्वीकार नहीं हुआ । अपने ढंग से हम समाधि का एक चित्र बनाया, तरीका बनाया । उस तरीके से हम संयम किया । संयम करने के फलस्वरूप तो जर्रा-जर्रा अस्तित्व हमको, हमारे सामने दिखा, दिखना शुरू हुआ। देखने का मतलब समझना है।

एक परमाणु से लेकर इतनी बड़ी धरती तक क्या-क्या प्रक्रिया से गुजरी उसको हम क्रमवत् देखा है । विधिवत देखा है, उसको आपको बोध करा देते हैं। ये स्थिति मुझमें स्थापित हुई । इसी के साथ परमाणुओं के कतार में एक 'जीवन परमाणु' को देखा । वो 'जीवन परमाणु' मुझमें आपमें, आज पैदा हुए आदमी में, शरीर छोड़ा हुआ स्थिति में, ये सब समान रहते हैं। ये बोध हुआ शरीर छोड़कर भी जीवन रहता और शरीर के साथ भी रहता है । शरीर के साथ क्यों रहता है।

उसमें पूछा जाए तो आगे प्रसंगवश मैं बताऊंगा। इस जगह में हम देखा कि शरीर के माध्यम से 'जीवन' स्वयं को मानव परंपरा में प्रमाणित करना चाहता है । इतना ही सूत्र है इसका। यह जीवन क्या प्रमाणित करना चाहता है ? इसका उत्तर ये मिला; जीवन पहले जीना चाहता है उसके बाद तो जीने के साथ-साथ सुखी होना चाहता है । सुखी होने के साथ-साथ प्रमाणित होना चाहता है।

ये तीन स्थितियाँ है। इसमें से जो पहली स्थिति है: जीना चाहते हैं वह जीव कोटि में ही पूरा हो जाता है । जैसे ही वो सुखी होना चाहते हैं और प्रमाणित होना चाहते हैं यह मानव कोटि में ही पूरा हो सकता है और कहीं पूरा होता नहीं । इसको मैंने भली प्रकार से देखा है । ये बहुत संतुष्टि की जगह मुझे मिली । उसके बाद उसी के चलते सुखी होने के लिए जो सूत्र रहा - 'समाधान सहित व्यवस्था में जीना' ये भी देख लिया ।

जितना भी जड़ संसार है जिसको हम पदार्थावस्था, प्राणावस्था कहते हैं वह ठोस, तरल और विरल रूप है और जितनी भी प्राणकोशाओं से बनी हुई रचनाएं है उनके मूल में बहुत सारे रस-रसायनों का संयोग होना अनुभव हुआ है। मानव जाति को और भी जो करना है, करते रहेंगे। तो इनसे रचित सभी वस्तुओं का जो संयोग से ही कुल मिलाकर के शरीर रचना की बात देखी। भौतिक रासायनिक वस्तुओं से ही ये जीव-जन्तु और मानव शरीर भी बनता है । तो इन जीव-जन्तु और मानव शरीरों में जो अंतर मैंने देखा कि मानव शरीर रचना में ही मेधस तंत्र पूर्ण समृद्ध हो पाता है। समृद्ध होने का मतलब यह है कि जीवन बहुमुखी विधि से अपने को प्रमाणित करने योग्य मेधस तंत्र बना रहता है। इसको मैंने सटीक देखा है ।

ये सब देखने के बाद मुझे लगा जीव कोटि अपनी व्यवस्था में है, व्याख्यायित है, अपने में परिभाषित है । वैसे ही मानव भी त्व सहित व्यवस्था के रूप में परिभाषित है और व्याख्यायित है और इस ढंग से जीने पर आदमी को सुखी होना बन जाता है ये भी हमको पता लगा । इसी के साथ-साथ वे उत्तर भी

मिल गये । वाकई में मोक्ष क्या है ? बंधन क्या है ? जिस बात के लिए हम चले थे उसका उत्तर इसी जगह में मिल गया । कैसा मिल गया ? जीवन हर मानव शरीर को संचालित करता है; क्या प्रमाणित करना है ? पहले बताया सुख को प्रमाणित करना है । सुख को प्रमाणित करने के लिए क्या होना पड़ता है ? समझदार होना पड़ता है। मानव समझकर व्यवस्था को प्रमाणित करेगा और सुख को प्रमाणित करेगा और दूसरी विधि से कर नहीं पायेगा । मैं स्वयं साधना करता रहा सब लोग कहते रहे बड़े नियम से, बड़े संयम से, बड़ा सटीक रहता है । आदमी सब उमड़-उमड़ करके हमको देखने आते थे किन्तु हम गवाही दे रहा हूँ साधना के प्रारंभिक स्थिति में हमारी मानसिकता में कोई भी संयम नहीं रहा। जब तक हम समाधिस्थ नहीं हुए तब तक हममें कोई मानसिक संयम नहीं रहा । हमारे में इतना ही बात रही कि हमें साधना करना है और कोई ऊटपटांग कार्य हम नहीं कर सकते । किन्तु ऊटपटांग बात हमारे मन में ना उपजे ऐसा कोई बात नहीं थी । **इस आधार पर मैं दावे के साथ कह सकता हूँ जब तक आदमी समाधिस्थ नहीं हो जाता तब तक ऊटपटांग विचार ना आए ऐसा कोई कायदा अस्तित्व में नहीं है ।** मानव स्वयं नहीं चाहता कि ऊटपटांग बातें हो, मन में आवें; साधना करने वाला तो कोई चाहता ही नहीं। मैं भी नहीं चाहता रहा फिर भी होता रहा। यही संकट सभी साधकों के सामने आता है । इसे साधक जब तक झेल पाता, झेल पाता है जब झेल नहीं पाता, झेल नहीं पाता है यही मैं कह सकता हूँ यही इसकी समीक्षा है।

अब जब इस मुद्दे का उत्तर मिल गया क्या चीज है बंधन और मोक्ष । बंधन है नासमझी, भ्रम । नासमझी क्या है हम जीव जानवरों जैसा जीएं । जानवर के क्रियाकलापों को मानव के लिए प्रमाण कैसे मान लें । इसी को प्रमाण मान लें उसके अनुरूप यदि मानव जीने के लिए प्रवृत्त होते हैं तो यही मानव जाति के लिए भ्रम है । नासमझी से जीने के लिए परंपरा हमको मजबूर करती है । उसका प्रमाण है कि कामोन्मादी मनोविज्ञान, भोगोन्मादी समाजशास्त्र और लाभोन्मादी अर्थशास्त्र । इसके बीच में चलता हुआ आदमी अपने बच्चे को बहुत अच्छा बने,

श्रेष्ठ बने, संस्कारी बने, सुखद बने, सुशील बने ऐसा आशीर्वाद करते हैं । अब इसका-उसका तालमेल कहाँ है । बच्चों को हम जो सिखाते हैं, पढ़ाते हैं उसका और जो आशीष देते हैं उसका तालमेल कहाँ है।

दूसरा प्रश्न राष्ट्रीय चरित्र उसका भी उत्तर मिल गया । क्या मिल गया ? अस्तित्व में हर एक अपने त्व सहित व्यवस्था में है । समग्र व्यवस्था में भागीदारी करता है । ये चीज मानव में भी आने के लिए रास्ता मिल गया । मानव की परिभाषा मिल गयी । **''मानवता'' जागृत मानव का कार्य-व्यवहार का स्वरूप है । उस कार्य-व्यवहार को हम सूत्रित करते हैं, व्यवहार में व्याख्यायित करते हैं यही समाजशास्त्र या संविधान कहलाता है । मानव के आचरण को बोध कराना ही समाजशास्त्र का मूल वस्तु है ये हमको समझ में आ गया ।** इस ढंग से दोनों मुद्दों पर हमको उत्तर मिल गया कि मानवीय आचार संहिता होगी संविधान से। संविधान के रूप में हम राष्ट्रीय चरित्र को पहचान सकते हैं । इसके बाद हम भ्रममुक्त हो जाएं तो मानव की तरह जिया जाए यही भ्रम से मुक्ति है, मोक्ष है । ना बर्फ को पत्थर बनाना, ना पत्थर को पानी बनाना, ना किसी को रूढ़िगत आशीर्वाद देना है ना कोई चमत्कार करना है ना कोई सिद्धि दिखानी है। अस्तित्व में न कोई सिद्धि है न कोई चमत्कार है इसको हम सटीकता से देखा है । शाप और अनुग्रह के बीच कराहता हुआ आदमी आज भी करोड़ों-करोड़ों है । तो इसका एक ही उत्तर है जिस क्षण हम आप जागृति की दिशा में एक भी कदम बढ़ाते हैं उसी मुहूर्त में सम्पूर्ण शाप, ताप, पाप तीनों ध्वस्त हो जाता है । इनका कोई कलंक नहीं रह जाता । वह कैसे इसका उत्तर गणितीय विधि से इस प्रकार दिया। जैसे हम गणित को हजार बार गलत किए रहते हैं किन्तु जब सही करना आ जाता है तो जीवन भर के लिए सही हो जाता है। जब तक गलती करते रहते हैं तब तक एक बार जो गलती करते हैं दुबारा वो गलती करते ही नहीं, दूसरी गलती ही करते हैं । उसको भी हम घटना के रूप में देख सकते हैं यदि करोड़ बच्चों के लिए गणित का प्रश्न दिया जाए; सही उत्तर देते हैं तो सबका एक ही होता है । गलत होते हैं तो करोड़

होता है। हर सामान्य व्यक्ति भी इसका सर्वेक्षण कर सकता है। इस ढंग से हम एक और सूत्र पा गये । **हम मानव सही में एक हैं गलती में अनेक ।**

जब अस्तित्व को देखा; महिमा सम्पन्न एक सूत्र हमको मिला । अस्तित्व में दो ही प्रजाति की वस्तुएँ हैं । पहली एक-एक के रूप में जिन्हें गिन सकते हैं जिसको प्रकृति कहा जा सकता है । दूसरा जो सर्वत्र फैला हुआ है इसको हर व्यक्ति एक क्षण में समझ सकता है । प्रत्येक एक-एक वस्तु इस दूसरी वस्तु में भीगा है, घिरा है, डूबा है । इसे व्यापक कह सकते हैं । एक-एक वस्तु (इकाईयाँ) दो प्रजाति की है - एक जड़, दूसरा चैतन्य। चैतन्य वस्तु का मतलब है जीव कोटि - मानव कोटि और जड़ वस्तु का मतलब है - पदार्थावस्था, प्राणावस्था। इसमें सभी खनिज, मिट्टी, धातु तथा प्राण कोशाओं से बनने, बिगड़ने वाली वस्तु हैं । ये जितने भी वस्तुएं है व्यापक वस्तु में भीगी ही है, घिरी ही है, और डूबी ही है इसको मैंने सटीकता से देखा है । व्यापक वस्तु से एक-एक वस्तु अलग होने का अस्तित्व में कोई प्रावधान नहीं है । अस्तित्व में जिसका प्रावधान नहीं है मानव उसे पैदा नहीं कर सकता।

अस्तित्व में जो भी प्रावधान है उसकी उपयोगिता को छोड़कर दुरूपयोगिता की ओर मानव कुछ भी उपलब्धि करता है तो सिवाए बर्बादी के और कुछ हाथ लगता नहीं है । जैसे- युद्ध के लिए हमने बहुत सारी चीज उपयोग किया इससे धरती और मानव को बरबाद करने के अलावा दूसरा हम कुछ नहीं कर पाए । शायद यह सारे वैज्ञानिकों को धीरे-धीरे समझ में आ रहा है । यदि यह पहले समझ में आ जाता तो मानव समृद्ध व सुखी हो सकते थे । अनेक घाट-घाट के बाद नदी समुद्र में आती है, शायद नियति यही रही हो । पहले रहस्यमयी याने आदर्शवाद के बीच आदमी को आना पड़ा, स्वीकारना पड़ा इससे जो राहत मिला वह मानव को पर्याप्त नहीं हुआ । पुनः भौतिकवाद के शिकंजे में आ गये । इसमें भी जो राहत मिला वह सुख, समृद्धि के अर्थ में पर्याप्त नहीं हुआ। आज जो दर्द है यह उसकी बात है । दोनों जगह से हम पूर्ण राहत नहीं पाये, स्वाभाविक है तीसरी आगे सीढ़ी की जरूरत है ।

इस ढंग से जो उत्तर पाए बंधन और मोक्ष उसका उत्तर यह बना - **"मानव समझदार होता है तो बंधन से मुक्ति पा जाता है"।** अब समझदार हो कैसे ? इसके लिए जब देखी हुई बात को मैंने देखा कि मुझमें क्या भ्रम है ? 'मुझमें' मैं शोध किया, 'मुझमें' मैं जाँचा तब पता लगा कि हमारे पास बंधन का कारण कुछ भी नहीं दिखता; तो यही स्थिति क्यों न सबमें पैदा की जाए। सबमें पैदा करने पर कैसा लगेगा ? तब जैसा आपको पहले सुनाया था । **भूमि स्वर्ग हो जाएगी, मानव देवता हो जाएगा, सभी धर्म सफल हो जाएगा, नित्य शुभ ही शुभ होगा ।** परंपरा के रूप में नित्य शुभ होगा । इसमें अपने को हम फिर जांचने लगे क्या हम यह सब संप्रेषित कर पायेंगे ? क्या इसकी लोगों को जरूरत है या नहीं ?

ये सब उसके बाद शुरु हुआ । तो मुख्य मुद्दा जिससे मैं अपने में आश्वस्त हुआ कि संविधान में मानवीय आचरण रूपी मानवीय आचार संहिता को समावेश कर सकते हैं। जिससे मानवीय राष्ट्रीय चरित्र प्रमाणित होगा । इस जगह में हम निश्चित हूँ । मैं स्वयं पारंगत हूँ और प्रमाण भी हूँ । **'अस्तित्व' मुझको समझ में आया है आपको समझा देंगे और 'जीवन' मुझे समझ में आया है और आपको समझा देंगे। 'मानवीयता पूर्ण आचरण' मुझको समझ में आया है आपको समझा देंगे।** यदि ये तीनों तथ्य समझ में आता है, माने हम समझदार हो गए । समझदार होने पर क्या हो गए ? समझदार होने से बंधन मुक्त हो गए । कैसा बंधन ? भ्रम रूपी बंधन से मुक्त हो गये । पहले बुजुर्गों ने क्या बताया आवागमन से मुक्ति होगी । आवागमन से मुक्ति का कोई ताल्लुकात नहीं है । न कोई गया है न कोई आएगा । जो है सब अस्तित्व में है ।

मरने के बाद भी जीवन अस्तित्व में है और शरीर चलाते समय भी जीवन अस्तित्व में है । कोयला जलाने के बाद भी रहता है विभिन्न स्वरूपों में । ये भौतिक-रसायन शास्त्री इस बात को समझे भी होंगे । नहीं समझें होंगे तो सबको समझना ही होगा, मजबूरी है। इस ढंग से 'समझदारी' समझ में आती है। मूलतः 'वस्तु' का नाश नहीं होता । उसी आधार पर मैंने मंगल कामना की है कि भूमि

यदि सख्त रहेगी, मानव यदि व्यवस्था में जी सकता है यही सार्वभौमिक नित्य मंगल होने का आधार है । इस विधि से जो मंगल कामना मेरे मन में उपजी उसके समर्थन में पूरे अस्तित्व में मानवीयता पूर्ण आचरण ही एक प्रधान मुद्दा है। इससे बड़ा उपकार यह होगा धरती को बिना घायल किये, बिना पेट फाड़े, बिना बर्बाद किए मानव चिरकाल तक इस धरती पर रह सकता है इसकी भी विधि इसी समझदारी से आती है। यदि धरती स्वयं संभल पाती है ।

आज तक के बीते इतिहास में मानव कुछ भी अप्रत्याशित घटना घटित किया है वो सारी घटनाएं नासमझी से ही घटित हुई है । अभी धरती को जितना घायल करने की बात हुई, धरती का पेट फाड़ा गया, धरती को बुखार उत्पन्न किया, धरती की सतह पर अनेक प्रकार की विकृतियाँ तैयार की । उसके फलस्वरूप नदी, नाला ये सब बर्बाद हो गये, हवा पानी को बर्बाद कर दिए और इससे जो आदमी त्रस्त हो रहे हैं ये हम आप सबको विदित ही है । जब तक धरती कष्टग्रस्त रहेगी तब तक धरती में रहने वाले समस्त वनस्पति, समस्त जीव, और मानव सभी कष्टग्रस्त होंगे ही । धरती को घायल करके आदमी स्वस्थ रहे, सुखी रहे इसकी परिकल्पना कितने अच्छे सोच किए होंगे आप ही सोच लीजिएगा। अब इससे आगे की शुभ बात यह निकलती है कि यदि हम धरती को तंग करना बंद कर देते हैं तो आश्वस्त होने का मुद्दा है कि इस धरती की सतह में जो सम्पदाएं हैं वे अपने आप में इस धरती के आदमियों के जीने के लिए पूरी पड़ती है। गलती, अपराध, द्रोह, विद्रोह ये सब चीज मानव की नासमझी का दोष है। ये समझदारी की उपज नहीं है इसकी गवाही यही है मानव असंतुलित, धरती असंतुलित, नदी-नाला, पहाड़, जंगल सब असंतुलित है। हम मानव विज्ञान युग में यह सब अपराध कर चुके हैं उसके बाद भी डींग हाँकने में बाज नहीं आए और सोचते हैं हम विज्ञान से ही अच्छा ठोस पायेंगे जबकि धरती से ये मानव जाति कूच होने की जगह पर आ गयी है । इस पर ध्यान देने की बात है । जब भी इस समस्या से बचना चाहेंगे आदमी को समझदार होना ही होगा। दूसरा कोई ठौर नहीं है । नासमझी से अपराधों का रोकथाम होता नहीं चाहे राष्ट्रीय संविधान विधि से

ही हो, अपराध तो अपराध ही है । अभी धरती की छाती पर जितने भी राष्ट्र में मानव निवास करते हैं सभी राष्ट्रों का अपना एक संविधान रहता है। सभी राष्ट्रों के संविधान में तीन मुख्य मुद्दे हैं और एक वचन है, महावाक्य है, वो है **'शक्ति केन्द्रित शासन'** । शक्ति केन्द्रित शासन की जो व्याख्या है उसमें गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना, युद्ध को युद्ध से रोकना यही तीन कर्म है। इन तीनों कर्मों से कहीं भी ऐसा नहीं दिखता है कि हम अपराध से मुक्ति पा गए । ये तीनों चीजें अपने आप में हर दिन, हर माह, हर वर्ष, हर शताब्दी और मजबूत होती जाती है। युद्ध की मजबूती, अपराधों की विपुलता, गलतियों की कतार ये ही इतिहास में भरी हुई हैं । पन्ने रंगे हुए हैं । ये गवाही है। अगर हम इनका समाधान खोजते हैं तो इसके मूल में पाते हैं इन सभी परिस्थितियों को बनाने वाला केवल आदमी ही है । दूसरा महत्वपूर्ण कारण है 'धर्म संविधान'। सम्पूर्ण धरती के जितने भी धर्म संविधान हैं उसमें यह माना गया है आदमी जो मूलतः पापी, अज्ञानी, स्वार्थी होता है । जबकि वास्तविकता इससे भिन्न होती है । तो पापी को तारने के लिए, अज्ञानी को ज्ञानी बनाने के लिए, स्वार्थी को परमार्थी बनाने के लिए सभी धर्म संविधान अपने-अपने ढंग की युक्तियाँ, चरित्र, कर्तव्य, दायित्व और कर्मकाण्ड आदि कुछ भी बनाये है। यह भी एक बहुत स्पष्ट घटना है । इनका परिणाम क्या हुआ ? अभी तक कोई अज्ञानी ज्ञानी हो गया ऐसा मानव जाति ने पहचाना नहीं। स्वार्थी परमार्थी हो गया ये भी प्रमाण मिला नहीं । पापी पाप से मुक्त हो गया यह भी प्रमाण नहीं मिला।

मैं आपको इसके पहले कुछ बताया था । समाधि पर्यन्त तक साधना है। साधना काल में, मानव में वैचारिक रूप में समाधानित होना बना ही नहीं रहता, मन उद्वेलित रहता ही है, क्योंकि मानव समस्या से पीड़ित होकर ही तो समाधि की ओर दौड़ता है । समाधि तक प्रयत्न करते हुए ही आदमी की ऊँचाई दिखाई पड़ती है। साधनाकाल में मानव को तमाम प्रकार की ऊटपटांग बात आती है समाधि के बाद उनका शमन होता है । विकल्प विधि से अध्ययन, पारंगत, प्रमाण विधि है ।

समाधि के बाद मानव को कुछ करने की इच्छा होती ही नहीं, कुछ पाने की इच्छा होती ही नहीं, कुछ रखने की इच्छा होती ही नहीं ये भी बात देखी गयी है । तो हमको कैसे इच्छा हुई ये सब तैयार करने के लिए । मैं आपको पहले ही विनय कर चुका हूँ कि मैं मुक्ति के लिए, स्वर्ग के लिए तो समाधि किया नहीं था मैं मेरे प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए समाधि के लिए प्रवृत्त हुआ था । समाधि में प्रश्नों का उत्तर मिला नहीं तो मुझे समाधि हुई या नहीं इस बात को जांचना शुरु किया । इसी जांच में ये सब चीजें समझ में आ गयी । मानव के पुण्यवश, मानव के भविष्यवश, मानव के सर्वशुभवश, सर्वकल्याणवश ये बात निकल के आ गई । ये किताबों से नहीं निकला है। ये सच्चाई है । बुजुर्गों ने हमको इतना ही मार्गदर्शन किया था कि समाधि से ही उत्तर मिलेगा । समाधि मुझको हुआ या नहीं, इसको प्रमाणित करने के लिए हमने संयम किया और उसी के बलबूते ये बातें निकल आई। मानव की समझदारी तरंगवत है । पहले जंगलयुग में, शिलायुग में और धातु युग में जैसा मानव जिया ये सब इतिहास में लिखा हुआ है । जैसे ही राजयुग आया तो काफी लोगों ने राहत पाया । राजा जानमाल की रक्षा करेगा जबकि वो चीज अभी तक हुआ नहीं । जान माल की रक्षा हुई नहीं है अमन चैन तो बहुत दूर है ।

हर परिवार, हर समुदाय जान-माल की रक्षा और अमन चैन के लिए चिंतित रहता ही है । इसी तरह आदर्शवादी सीढ़ी लगी है उससे लोगों को जो कुछ भी राहत मिली और कुछ काल के बाद वह भी पर्याप्त नहीं हुआ। पुनः जब अपर्याप्त हुआ तो स्वाभाविक था पुनः विचार किया । विचार के रूप में विज्ञानवाद आया । इसमें तर्कसम्मत रूपी खूबी के कारण लोगों को यह स्वीकृत हुआ । पहले उपदेशवाद में तर्क की कोई गुंजाइश नहीं थी । आदर्शवाद में करो, ना करो वाली बात में न मानने वाले लोगों को पापी करार देते रहे जितना प्रताड़ित करना है वो भी करते रहे । ये सब इतिहास में लिखा है । तर्कसंगत और तर्क के लिए आमंत्रण होने के कारण मानव ने विज्ञानवाद को स्वीकार किया।

दूसरा स्वर्ग की जो कल्पना थी, जिस सुख की कामना थी वो विज्ञान से

प्राप्त सुविधाओं में लोगों को मिलने लगा। उसको भी खूब चख लिया आदमी ने। इसमें भी विज्ञान की उपलब्धियाँ मानव के लिए पर्याप्त नहीं हुई। पुनः झंझट में फंसने लगा मानव। इस तरह मानव झूलता ही रहता है भक्ति-विरक्ति और संग्रह सुविधा के बीच। संग्रह-सुविधा से जब आदमी त्रस्त हो जाता है तब भक्ति-विरक्ति की ओर दौड़ता है और जब भक्ति-विरक्ति से पैर ठंडे पड़ जाते हैं तो संग्रह-सुविधा की ओर दौड़ता है। और दोनों सुनने में अच्छा लगता है किन्तु अच्छा लगना और अच्छा होने में कितनी दूरी है। हर व्यक्ति सोच सकता है। अच्छा लगने मात्र से अच्छा होता नहीं है। जैसे ठंडा पानी, पीना अच्छा लगता है परंतु इससे अच्छा ही होता है ऐसा कोई नियम नहीं है। ठंडा पानी पीने से कोई रोगी हो सकता है, किसी को खाँसी हो सकती है। अतः ठंडा पानी अच्छा लगना या ठंडा पानी अच्छा न लगना दोनों सार्वभौम नहीं हो सकते हैं। यह शरीर के लिए अनुकूल-प्रतिकूल पक्ष है।

विज्ञानवाद के कारण हम एक अस्थिरता, अनिश्चियता की ओर चले जा रहे हैं और विज्ञानियों ने मानव को एक यंत्र के रूप में व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। वे अभी तक सफल नहीं हो पाये है, ये सब सुना हुआ है। जो वैज्ञानिक मानव को यंत्र के रूप में व्याख्यायित करता है वह स्वयं इस व्याख्या से असंतुष्ट रहता है। आजकल मानव की यांत्रिक कार्यविधि को समझना एक बड़ा मुद्दा बना है। इसी आधार पर मानव के व्यवहार में गति, कार्य में गति, विचार में गति आ पायेगी ऐसा सोचते हैं। जबकि आदमी इस रूप में आता नहीं। विज्ञान ने यांत्रिकता को ही सटीक माना है इसको आदमी समझ सकता है, झेल सकता है। आदर्शवादियों ने संवेदनशीलता को नकारने की वकालत की। संवेदनशीलता को आदमी समझ नहीं सकता, झेल नहीं सकता। दोनों वादों में दूरियाँ बरकरार है। इस तरह एक के बाद एक समस्या में मानव जकड़ता गया। समस्या के साथ ही शरीर यात्रा को समाप्त करते हैं। कुल मिलाकर हमारी इस ढंग से स्थिति बनी है। अभी जो मैं मानव कुल के समक्ष प्रस्ताव रख रहा हूँ वह मानव जाति का ही पुण्य है ऐसी मेरी स्वीकृति है। मैंने जो परिश्रम किया उसका

मैं, मूल्यांकन करता हूँ वह इतने बड़े फल (जितना हम पा गये) के योग्य नहीं है। जैसे अमरूद के पेड़ में एक टन का फल लग जाये तो पेड़ टूट जायेगा ऐसा देखा जा सकता है । उसी भांति हमारे साथ ऐसी ही घटना घट गयी है । हमारे परिश्रम से अधिक यह बात है । इस परिश्रम को कौन दोहराता है यह बात इसमें मुख्य है। मानव में परिश्रम से अधिक फल को कौन दोहराता है उसे हमने सटीकता से देखा है । जीवन दोहराता है । जीवन ऐसे फल को लेकर चलने में समर्थ है, कैसे ? जीवन को हम अक्षय बल, अक्षय शक्ति के रूप में देखा है । आपको भी अध्ययन कराते हैं। आपकी जिज्ञासा हुई तो आप भी समझ सकते हैं, समझा सकते हैं । हमारा विश्वास है कि आपको समझने की जरूरत है। इसलिये आप समझेंगे ही । यह बात समझ में आती है कि जीवन, शरीर के माध्यम से जो कुछ भी तय करता है वह शरीर की आवश्यकता से अधिक हो ही जाता है । यह सहज प्रक्रिया है । मैंने जीवन को देखा है; मानव को जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में देखा है । अभी तक मानव जीवन को और अस्तित्व को अध्ययन विधि से समझाने में असमर्थ थे। विज्ञान जहाँ भी अस्तित्व बोध कराने गया हर जगह अस्थिरता, अनिश्चयता को दिखाता रहा और लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद के लिए, संघर्ष करने के लिए विचार देता रहा । हम मानव इसे स्वीकारते रहे । स्वीकार करके जब हम उसको भोग कर गुजरे वह हमारे लिये तृप्ति का आधार नहीं बना । इसका गवाही यही है कि सुविधा-संग्रह का तृप्ति बिन्दु का आधार नहीं हो पाया । इस तरह से हम अंतरविरोधी होकर भी जीते रहे । अभी आपके सम्मुख जो प्रस्ताव प्रस्तुत है इसको समझना ही है । मैं जैसे जाँचता हूं अपने में, वैसे ही आपको भी जाँचना ही है और जाँच कर जब आप जीते हैं तभी तृप्त होते हैं तब दूसरों को समझाने के लिए अपने को अर्पित करना होता ही है । जब हम दूसरों को समझा पाये तब हमारी समझ का प्रमाण मिलता है यह एक कसौटी है समझदार होने का । मुझको जो अनुभव हुआ वह यह है कि समझदारी में हम सह-अस्तित्व को देखा है । सह-अस्तित्व में मानव अपने परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर समृद्धि का अनुभव कर सकता है । व्यवहार के हर मूल

मुद्दे में मानव की समझदारी समाधान के रूप में ही ध्रुवीकृत होती है। इन तीनों बातों को हमने देखा है जिसका अध्ययन कराने के क्रम में, प्रमाणित करने के क्रम में हम दूर-दूर तक फैल जाते हैं जब कि शरीर की लम्बाई-चौड़ाई निश्चित ही रहती है । मानव के लिए जो प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहे हैं वह स्वयं में एक व्यक्ति की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई से बहुत दूर-दूर तक फैलने वाली चीजें है । इसी प्रकार हर मानव में वह योग्यता है हर मानव में वह अरमान है, हर मानव में समझदारी के अर्थ में उत्साह जगाया जा सकता है यह इस प्रस्ताव का अर्थ है, प्रयोजन है ।

विज्ञान अपने में एक सीढ़ी है, उससे पहले की सीढ़ी आदर्शवाद है, उससे पहले की सीढ़ी ग्राम कबीला संसार है, उससे पहली सीढ़ी जंगलों में भटकता हुआ आदमी, शिलायुग है । इस ढंग से सीढ़ी दर सीढ़ी हम यहाँ तक पहुँचे । इस उपकार को अपने को स्वीकारना चाहिए और इसके लिए कृतज्ञ हैं । इस पृष्ठभूमि का सामान्य उपक्रम आपको बताया । सार संक्षेप में परंपरा ने जो उच्चकोटि की चीज हमको प्रस्तुत की उसमें हम संतुष्ट नहीं हुए । फलस्वरूप हम अपने को एक जिम्मेदार व्यक्ति माना । मेरे प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने की जिम्मेदारी मेरी है ऐसा स्वीकार किया । फलस्वरूप प्रयत्न किया और कोई बात के लिए हम प्रयत्न नहीं किये । इस वैचारिक प्रयत्न में हम अंत में यह पाया कि सभी मानव सुखी हो सकता है, धर्म सफल हो सकता है धरती स्वर्ग हो सकती है, मानव देवता हो सकता है इसलिये हमारी इच्छा हुई, उत्साह बना कि इस बात को मानव कुल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए उसी प्रयत्न में हम चल रहे हैं ।

जब मैं अस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण को भली प्रकार से समझा उसके तुरंत बाद ही मुझमें एक ऐसी स्थिति बनी जिसको अभी आपके सम्मुख रखने जा रहा हूँ । समझदारी के बाद **अपने आप में विश्वास** बना । इसके लिए कोई प्रयास या बहुत परिश्रम किया ऐसा कुछ नहीं । विश्वास को मैंने हर आयामों में जांचना भी शुरु किया । इसी भांति **श्रेष्ठता का सम्मान** करना भी बन गया । श्रेष्ठता का मूल्यांकन करना बन गया फलस्वरूप सम्मान करना बनता

ही है । जिसका हम मूल्यांकन नहीं करते उसका सम्मान कर नहीं पायेंगे । तीसरा मुद्दा ये बना जो कुछ भी हमारी समझदारी थी उसके अनुसार हमारे व्यक्तित्व को पूरा का पूरा एक सुविधाजनक विधि से हम झेलने योग्य बन गये । मुझे कहीं भी ऐसी कोई दिक्कत महसूस नहीं हुई कि प्रतिभा के अनुसार, अस्तित्व सहज, जीवन सहज विधि से मैं जी नहीं पाऊंगा । इसका नाम दिया **प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन** । इसमें हम सही सच्चा उतर गए। चौथी स्थिति आई **व्यवहार में सामाजिक** हो गया। सामाजिक होने पर तृप्ति मुझको अपने आप में मिलने लगी । इसका लाभ यह हुआ कि हमको संसार के प्रति कोई शिकायत शेष नहीं रही। अब मैं कितना सार्थक करता हूँ इस बात की जाँच हर दम करता रहता हूँ । मैं जितने संबंधों में जीता हूँ अपने दायित्व कर्तव्यों के साथ सार्थक जीता हूँ । पाँचवी स्थिति आई है **समृद्धि** । वैसे तो मैं परिश्रमी परिवार में पैदा हुआ, परिश्रम करना, सेवा करना हम जानते थे। किन्तु समृद्धि का मतलब हमको समझ में नहीं आता था । अब समृद्धि का मतलब समझ में आ गया । हमारे परिवार के लिए जितनी जरूरत है उससे ज्यादा हम उत्पादन कर लेते हैं इसलिए हम समृद्धि का अनुभव करते हैं। इस ढंग से बहुत सारी बढ़िया चीजें हमारे हाथ लग गयी इसका नाम दिया **स्वायत्तता** । **मैं अपने में स्वायत्त हुआ** इसलिए आप भी हो सकते हैं । जब हम स्वायत्त हुए तो हमारे बाद इस संसार को हम अर्पित कर सकते हैं, समझा सकते हैं, बोल सकते हैं, फलस्वरूप उसको एक वाङ्मय दस्तावेज रूप देना शुरू किया। पहला दस्तावेज हुआ - मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद । मध्यस्थ दर्शन को चार भाग में ध्रुवीकृत किया ।

पहला भाग का नाम दिया है :- **मानव व्यवहार दर्शन।** दूसरा भाग का नाम है :- **कर्म दर्शन।** तीसरा भाग का नाम है :- **अभ्यास दर्शन।** चौथे भाग का नाम है :- **अनुभव दर्शन।**

इस ढंग से चार भाग में पूरा दर्शन को लिखा । इनका मूल तत्व है मध्यस्थ दर्शन । अस्तित्व में सम, विषम और मध्यस्थ शक्तियाँ अर्थात् गतियां है । इसके अपने-अपने ढंग के परिणाम है । जिसमें से मध्यस्थ बल और शक्ति वैभवित होना

ही मानव परंपरा का अद्‌भुत ध्येय है। इससे मैं भी चमत्कृत हुआ । अभी तक जितने भी वैज्ञानिक, ज्ञानी, अज्ञानी जिनको भी इसकी गंध लगी है वो चमत्कृत होते ही हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार सम, विषम शक्तियों को मानने की जगह में है मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ बल को कोई प्रयोजन के रूप में समझना अभी तक बना नहीं है । मैं सोचता हूँ यह बहुत बड़ी भारी कमी और खामी रह गयी । इसलिए पुनर्विचार करने के लिए जरूरत आ गयी तो मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ सत्ता, मध्यस्थ जीवन इस चारों बातों को चार तथ्यों को समझने समझाने का कार्य किया है इसी का नाम है - ''मध्यस्थ दर्शन'' ।

सह-अस्तित्ववाद को जब हम स्पष्ट करने के लिए तीन स्वरूप में तीन शीर्षक में तैयार हुआ । पहला - **समाधानात्मक भौतिकवाद** । इसका ध्रुव बिन्दु है :- **पूरा का पूरा भौतिकता और रासायनिकता ये अपने में 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में प्रकाशित है । समग्र व्यवस्था में ये भागीदारी करते ही हैं । चैतन्य प्रकृति के साथ भी पूरक हैं । जड़ प्रकृति, जड़ प्रकृति के साथ भी भागीदारी करते हैं** । इसको स्पष्ट करने की कोशिश की है । अभी मानव के पास जो भी वाद हैं वो संघर्षात्मक अर्थात् द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है। **जबकि सह-अस्तित्व सहज स्थिति-गति में कोई झगड़ा नहीं है, विद्रोह नहीं है, छीना, झपटी नहीं है, एक दूसरे के लिए पूरक हैं, एक उत्सव है, एक खुशियाली है, निरंतर विकास है,** इस बात को समझाने की कोशिश की है । वाङमय तो वाङमय ही है। किन्तु आदमी, आदमी से ही समझेगा मेरे अनुसार । वांङ्मय में तो कोशिश ही हो सकती है । इसमें मूल मुद्‌दा ये है **विज्ञान सम्मत विवेक; विवेक सम्मत विज्ञान** विधि से तर्क को प्रस्तुत किया है । विवेक का तात्पर्य है प्रयोजन की पहचान। प्रयोजन यदि समझ में आता है, उसकी पहचान हो जाती है तो उसका विश्लेषण हम करेंगे। प्रयोजन समझ में नहीं आता है तो हम विश्लेषण करते जाएं क्या बनता जाता है वह आपको भी समझ में आता है । विज्ञान ने आज आदमी को जहाँ ले जाकर बैठाया है, या फंसाया है वो आप स्वयं मूल्यांकन कर सकते हैं। तो समाधानात्मक भौतिकवाद के अनुसार

अस्तित्व में जो भी पदार्थ है भौतिक और रासायनिक रूप में है ये मानव को व्यवस्था में जीने के लिए प्रेरक है और समग्र इकाईयां एक दूसरे के लिए पूरक हैं, वैभव के लिए सहायक है और आगे के विकास के लिए एक दूसरे से अंतर्संबंध से जुड़े हैं। इस ढंग से समाधान बताया गया है। सह-अस्तित्ववाद का दूसरा प्रबंध का नाम दिया :- **''व्यवहारात्मक जनवाद''** मानव जो है अस्तित्व में है । व्यवहार पूर्वक ही संतुष्ट होने की जगह है । व्यवहार 'मानव' मानव के साथ करता है । मानव का व्यवहार मानवीयता पूर्ण आचरण के रूप में स्पष्ट हो जाता है और इसी को स्पष्ट करने की कोशिश की है ।

उसके बाद तीसरा एक प्रबंध लिखा है **''अनुभवात्मक अध्यात्मवाद''**। अभी तक अध्यात्म जिसको संसार मानता रहा उसको समझाने में असमर्थ रहा । अध्यात्म को हम आसानी से चंद क्षणों में ही समझ सकते हैं। आप हमारे बीच जो रिक्तता है, दिखाई देता है, उसी को विस्तार और शून्य कुछ भी कह सकते हैं। ये रिक्तता जो आप व हमारे बीच हैं वैसे ही इस धरती और दूसरी धरती के बीच में है । एक सौर व्यूह दूसरा सौर व्यूह के बीच ऐसी ही रिक्तता है । एक आकाश गंगा दूसरी आकाश गंगा के बीच भी वैसा ही है । तो ये विस्तार सब जगह एक सा है । इतना ज्ञान होता है कि ये वस्तु व्यापक है । व्यापक वस्तु में समस्त एक-एक वस्तु (इकाईयाँ) डूबी, भीगी, घिरी है । इसी का अनुभव आदमी को सबसे पहले होता है । उसके बाद आदमी को स्वयं के होने का अनुभव होता है । आपके हमारे बीच यह व्यापक न हो तो आपका अनुभव मुझको हो ही नहीं सकता । इसलिए सर्वप्रथम जो भी अनुभव होता है व्यापक में ही होता है । इसी को स्पष्ट करने की कोशिश की है । इसकी जरूरत के बारे में भी प्रकाश डालने की कोशिश की है। अस्तित्व को समझे बिना अस्तित्व के ही एक भाग के रूप में जो मानव जाति है वह अपने को कैसे समझेगा । इसलिए अस्तित्व को समझना बहुत जरूरी है । व्यापक वस्तु में ही संपूर्ण एक-एक वस्तु है यह स्वयं सह-अस्तित्व की गवाही है । तो अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व को हम यदि भुलावा देते हैं सिवाए संकट के, दुख के और कुछ होता ही नहीं है । अभी तक हम

जितने भी द्रोह, विद्रोह, शोषण, युद्ध किए हैं ये सब सह-अस्तित्ववाद के विरोधी है। ये सब करने के बाद हम सही चीज को पाने की इच्छा किए, उम्मीद किए। हमारा उम्मीद पूरा हुआ नहीं और जैसा किए वैसी ही घटनाएं सामने आते रहीं। हम कभी हंसते भी रहे कभी रोते भी रहे। जैसे कोई परिवार, समुदाय दूसरे किसी को मार डालता है और बड़े खुश होते हैं कि हमारे शत्रु को मार दिया। सरकार भी, देश भी ऐसे ही सोचता है। अब क्या किया जाए ? धर्मगद्दी भी ऐसे ही बनता है। अब किसकी शरण में जाए मानव। इस तरह धर्मगद्दी, राजगद्दी, शिक्षागद्दी, व्यापार गद्दी सभी जगह भ्रम ही भ्रम मिलता है न कोई दिशा है न कोई प्रयोजन। अब हम कहाँ जायें ? क्या करें ? ये परेशानियां थी। ये सब परेशानियाँ जागृति के पूर्व मुझमें भी थी। जागृति उपरान्त हम बहुत अच्छी ढंग से इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार हुए कि इस पूरी चीज को मानव के पास पहुँचाना चाहिए। उसके बाद उसको शास्त्र के रूप में पा गये यानि जीने की कला के रूप में। अभी जो कुछ भी अर्थशास्त्र है वो लाभोन्मादी है। उससे तो आदमी सुखी हो नहीं सकता। सभी मानव के सुखी होने का रास्ता है तो केवल आवर्तनशील अर्थशास्त्र विधि से। स्वाभाविक है और व्यवस्था के अनुरूप है। दूसरा शास्त्र लिखा है - ''व्यवहारवादी समाजशास्त्र''। मानव न्ययायपूर्वक व्यवहार से ही संतुष्टि पाता है, मानव के साथ ही व्यवहार करता है, व्यवहार न्यायपूर्वक होता है तो संतुष्टि होती है। इस प्रबंध का मूल ध्रुव बिन्दु है - मानवीयतापूर्ण आचरण फलस्वरूप राष्ट्रीय आचार संहिता के रूप में हम मानवीय आचरण को स्वीकार कर सकते हैं। सभी देशों के देशवासी संविधान के रूप में स्वीकार सकते हैं। जिससे अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था होगी।

इससे संसार में एक समुदाय का दूसरे समुदाय के बीच जो युद्ध का आतंक बना रहता है उसका निवारण हो सकता है। जब तक युद्ध के प्रयास होते रहेंगे तब तक मानव धरती को तंग किये बिना जी नहीं सकेगा और ज्यादा तंग करने के लिए अधिक बुद्धि का प्रयोग करना पड़ेगा। इससे विज्ञान बुद्धि का भी मूल्यांकन हो जाता है। युद्ध के संरक्षण के लिए बहुत सा विज्ञान और वैज्ञानिक

लगे हुए हैं और इसके लिए पैसा पाते हैं अपने को धन्य मानते हैं । धरती को बर्बाद करना है बात इतना ही है। इससे मुक्ति पाना ही पड़ेगा हमको और इसके लिए समझदार होना ही है और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

तीसरा शास्त्र लिखा है - ''मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान'' इसमें यह बताना चाहा है कि संचेतना का आधार जीवन है, यह विकसित चेतना ही है । शरीर, संचेतना को अर्थात् पूर्णता के अर्थ में चेतना को मानव परंपरा में व्यक्त करने का माध्यम है । इस बात को समझाने की कोशिश की है । उसको आप लोग जांचेंगे । यदि आपको समझ में आ गया तो हमारा लिखना सार्थक हो गया। इस ढंग से दर्शन, विचार, शास्त्र तीनों चीजों को दिया। शास्त्रों का मूल आशय है कि मानव को व्यवस्था में जीना है। जीने के लिए कौन सा तरीका है ? विधि क्या है ? नीति क्या है ? प्रणाली क्या है ? इन बातों को शास्त्रों में स्पष्ट किया है । इसके बाद इसको क्रियान्वयन करने के लिए योजनाएं आई। योजनाएं तीन स्वरूप में आई ।

पहली योजना है - जीवन विद्या योजना । आदिकाल से मानव स्वयं के प्रति अज्ञानी बना रहा । आदर्श युग में भी आत्मा-परमात्मा नाम की चीजों को बहुत उपदेश रूप में समझाने की कोशिश किया, किन्तु समझा नहीं पाये। ये जो स्वयं के प्रति अनभिज्ञता है यही आदमी को ज्यादा परेशान किये हैं। यदि ये समझ में आ जाये तो आगे की जो बात है वह समझ में आयेगी ही । इसी कठिनाई को दूर करने के लिए जीवन विद्या योजना है। इस योजना का केन्द्र बिन्दु जीवन है। जो बच्चे-बूढ़े सभी मानवों में समान रूप से समझने का अधिकार विद्यमान है । मानव की समानता का आधार जीवन ही है। शरीर किसी भी दो मानव के एक समान होते नहीं है। जीवन समान है, जीवन की शक्तियाँ व बल समान है, जीवन का लक्ष्य समान है। जीवन जागृत होना चाहता है, जागृति ही इसका (जीवन का) लक्ष्य है । हर व्यक्ति समाधान को पाना चाहता है, हर व्यक्ति, न्याय चाहता है । आप सब इस बात को जाँच सकते हैं । आपका कोई अंग अवयव ऐसा नहीं है जिसमें न्याय की प्रतीक्षा हो, न्याय को चाहता हो ।

शरीर का कोई अंग समाधान को चाहता हो । उसी प्रकार शरीर का कोई अंग अवयव नहीं है जो समृद्धि चाहता हो, जबकि मानव न्याय, समाधान, समृद्धि चाहता ही है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि न्याय, समाधान, समृद्धि, सत्य यह सब जीवन की ही चाहत है क्योंकि जीवन और शरीर के रूप में मानव है । अतः जीवन के स्वरूप को समझा जाये जीवन की क्रियाओं को समझा जाये, जीवन तृप्त होने के लिये न्याय, धर्म, सत्य को समझा जाये यही छोटा सा काम इसमें से निकला है । इसी के आधार पर जीवन विद्या योजना प्रस्तुत किये हैं । उसे कार्ययोजना में परिणीत किया । विज्ञान के दिग्गज तथा विज्ञान नहीं जानने वाले ज्ञानी-अज्ञानी सभी इसे सुने हैं कुछ लोग समझ गये हैं और दूसरों को समझाने में लग गये हैं और समझाने में सफल हो गये हैं । तब हमें विश्वास हुआ कि जो हम समझे हैं वह सार्थक है और प्रमाणित है, इसे सब समझ सकते हैं और समझ कर समझा सकते हैं। दूसरी योजना है- शिक्षा का मानवीकरण। समझदार होना सबकी आवश्यकता है ही । इसलिये समझदारी की सारी वस्तुओं को शिक्षा में समावेश किया जाये। उसके लिये पाठ्यक्रम बनाया गया, स्कूल में प्रयोग किया गया। वह स्कूल है बिजनौर जिले के गोविन्दपुर में । वहाँ पर एक बहुत अच्छा अनुभव हुआ । पहले सारे शिक्षाविद् यह बोलते रहे कि विद्यार्थियों पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है । पर गोविन्दपुर में अनुभव किया गया कि विद्यार्थियों का प्रभाव वातावरण पर पड़ता है । इसको विशालरूप में देखने का अरमान है उसके लिये प्रयत्न जारी है। तीसरी योजना है- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था । शक्ति केन्द्रित शासन के स्थान पर समाधान केन्द्रित व्यवस्था। इस तरह से दर्शन, शास्त्र, और योजनाएं निस्पंदित होती है।

जय हो, मंगल हो, कल्याण हो ।

जीवन विद्या

जीवन को मैं समझा हूँ, आपको समझाने का प्रयास यहाँ से शुरू होता है। इस प्रक्रिया का नाम ''जीवन विद्या'' है । पहले आपको स्पष्ट करना चाहते हैं जीवन में समानता नित्य विद्यमान है। जीवन क्या चीज है इस बात को हर व्यक्ति जानना, मानना चाहता है और उसके फल-परिणामों को प्रमाणित करना चाहता है यह इसका मूल उद्देश्य है । 'जीवन' न भौतिक है न अभौतिक है । 'जीवन' परमाणु है, गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई है । गठनपूर्णता क्या है ? इस परमाणु में न तो विस्थापन होता है और न ही प्रस्थापन होता है । जबकि भौतिक रासायनिक रूप में जो भी परमाणु है उनमें समाहित अंशों में प्रस्थापन-विस्थापन होना पाया जाता है इसे ही हम ''परिणाम'' कहते हैं । परमाणु में निहित अंशों की संख्या में परिवर्तन होता है । वही परिवर्तन है और कोई परिवर्तन संसार में होता ही नहीं है । **आदमी जब भी कोई परिवर्तन करा सकेगा तो परिणामशील परमाणुओं के अंशों में परिवर्तन ही करा पायेगा।** इन परमाणुओं की दो प्रजातियाँ होती है - एक भूखा परमाणु, दूसरा अजीर्ण परमाणु । जिन परमाणु में तृप्त होने के लिए कुछ अंशों की भूख (आवश्यकता) बनी रहती है साथ में हर परिणाम अपने में यथा स्थिति संपूर्णता स्पष्ट होता है उन्हें भूखा परमाणु कहा गया । ऐसे परमाणु जिनमें कुछ अंश बहिर्गमित होना चाहते हैं उन्हें अजीर्ण परमाणु कहा है । इस तरह परमाणु दोनों तरह के तृप्त होने के अर्थ में ही क्रियाशील रहते हैं ।

वह तृप्त परमाणु है गठनपूर्ण परमाणु। यह गठनपूर्ण परमाणु ही चैतन्य इकाई है। चैतन्य इकाई नाम इसलिये दिया कि संज्ञानशीलता-संवेदनशीलता द्वारा मानव परंपरा में ही प्रमाणित करने की शक्ति जीवन में है । **जीवन के अभाव में यदि शरीर रचित भी कर लें तो संवेदनशीलता को ही प्रमाणित नहीं कर सकेंगे । संज्ञानशीलता तो दूर की बात है ।** इस ढंग से मानव संवेदनशीलता, संज्ञानशीलता को प्रमाणित करने के क्रम में ही व्यवस्था में जी पाता है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी कर पाता है। बस यह छोटा-सा काम है। संवदेनशीलता को

जीवावस्था के सभी जीव-जानवर प्रमाणित करते हैं। मानव संज्ञानशीलता को प्रमाणित किये बिना तृप्त होता नहीं है, सुखी होता नहीं है, चाहे जितना भी सिर कूट ले ।

मानव सुखी होना ही चाहता है। सुखी होने के क्रम में कभी हम सोचते हैं कि सुविधा संग्रह से सुखी हो जायेंगे, कभी जप-तप, भक्ति-विरक्ति से सुखी हो जायेंगे । सभी आदमी सुखी होने के लिये कोई-ना-कोई प्रयास करते ही है किन्तु इन प्रयासों से किसी को तृप्ति हुआ और निरंतर सुख मिला, इसका प्रमाण मिला नहीं । अब सुखी होने के क्रम में जैसा मैं सुखी हुआ समझदारी के आधार पर; मैं सोचता हूं हर व्यक्ति समझदार होने पर सुखी हो सकता है । **सही में हर मानव एक है गलती में अनेक ।** इसके लिये हर मानव में समानता की वस्तु को पहचानने की आवश्यकता थी ऐसी चीज जो सही का धारक-वाहक बन सके वह चीज मुझे समझ में आया, वह समाधान पूर्वक जीता हुआ 'जीवन' है।

'जीवन' जब समझदारी के साथ जीता है तब हर जगह समाधान को प्रस्तुत करता है । समाधान के साथ हर व्यक्ति सुखी होता है । समस्या के साथ दुखी होता है । समझने वाली वस्तु 'जीवन' है मानव शरीर को चलाता हुआ। हम लोग बैल को, गाय को और जानवरों को जो कुछ भी सिखाया वह सब संवेदनशीलता के अर्थ में ही है। अब आदमी एक दूसरे को कैसे सिखाए ? मारपीट कर तो कोई किसी को कुछ समझा नहीं पाया है । आजीविका के भय से आदमी जितनी देर नियंत्रित रहता है, उसके बाद भय का कवच भी उतार कर रख देता है । इसका उदाहरण इतिहास में दास-दासी प्रथा के अंत के रूप में मिलता है । संवेदनशीलता में भय और प्रलोभन होता ही है। भय और प्रलोभन के ही आधार पर सारे राष्ट्र, सारे धर्म, सारी प्रौद्योगिकी व्यवस्था, व्यापार संस्था व्यवस्था देने का दावा करते हैं। जबकि ना भय व्यवस्था है और ना प्रलोभन व्यवस्था है क्योंकि मानव को न भय स्वीकार होता है न प्रलोभन । तो क्या होना चाहिए मानव के पास; मूल्य और मूल्यांकन । मूल्यों को पहचानने की विधि चाहिए । मूल्यांकन करने की

तकनीक होनी चाहिए । ये दोनों चीज हमारे पास रहने से निरंतर समाधान की परंपरा चलेगी । मूल्य और मूल्यांकन भी समझदारी की ही प्रक्रिया है। यह शरीर की शारीरिक, यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है । अभी तो विज्ञान का कहना है सभी चीज यांत्रिक है, कुछ भावुक नहीं है । तो यांत्रिकता में भय और प्रलोभन से जूझते रहो। यांत्रिक विधि से सोचते-करते मानव यहाँ तक पहुँच गया कि यह धरती रहेगी अथवा नहीं ? इसी पर प्रश्न चिन्ह लग गया ।

समस्या का निराकरण समस्या से तो होगा नहीं, चाहे कितनी भी समस्यायें एकत्रित कर लो । समस्या का निराकरण समाधान से ही होगा । समाधान के बिना हमको राहत नहीं है । समाधान पाने के लिए चेतना विकास मानव चेतना पूर्वक मूल्य और मूल्यांकन विधि से व्यवस्था का समीकरण करने वाली पद्धति को हमें विकसित करना है । इस तरह जीवन संबंध, जीवन तृप्ति, जीवन लक्ष्य को केन्द्र में रखकर व्यवस्था समीकरण करेंगे तो हम सफल हो जाऐंगे । यदि जीवन को भुलावा देकर शरीर के अर्थ में हम जितने भी व्यवस्था देते हैं उससे अव्यवस्था ही पैदा होगी । शरीर को अच्छा लगने से सदैव अच्छा होता नहीं है । कोई भी शरीर क्रिया सतत् बनी नहीं रहेगी । **'शरीर' क्रिया को बारम्बार बदलना ही है । 'जीवन' सतत् बना ही रहता है ।** इसलिए जीवन के आधार पर निर्णय लेने की सद्बुद्धि की आवश्यकता है । जीवन सब मानव में समान है, जीवन की ताकत समान है, जीवन में बल और शक्ति अक्षय है । ये न कभी खत्म होता है न घटता है । ये क्यों नहीं घटता ? जीवन परमाणु में परिणाम में कोई परिवर्तन होना नहीं है। तो उसका बल और शक्ति अक्षय है । स्थिति में बल प्रमाणित होता है और गति में शक्ति । इसकी गवाही क्या है मानव अपने को सतत् होना स्वीकारता है । होना ही वर्तमान है । वर्तमान में ही हर वस्तु का अध्ययन होता है। उसी क्रम में वर्तमान में सबमें 'जीवन' समान है, जीवन सहज बल और शक्तियाँ समान है । चौथी बात जीवन का लक्ष्य सभी आदमी सुखी होना चाहते हैं । सबका लक्ष्य सुखी होना ही है । इन चारों बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

जीवन गठनपूर्ण परमाणु, चैतन्य इकाई है । अब इसको कौन बनाता है ये भी बात आती है । अभी तक कोई बनाने वाला, बिगाड़ने वाला है ये झंझट रहा ही है। उसी आधार पर मानव भी सोचता है। हम भी बना सकते हैं, बिगाड़ सकते हैं यही विज्ञान का मूल आधार है। तो बना सकने, बिगाड़ सकने के झंझट में पड़ने के कारण काफी कुंठाए आ चुकी हैं। कुछ देश कहते हैं हम एटम बम बना सकते हैं, कुछ नहीं बना सकते इसलिए ये समानता का कोई अर्थ ही नहीं हुआ। क्योंकि समानता अस्तित्व सहजता में है और बम बनाना सह-अस्तित्व विरोधी है। अस्तित्व जो है सह अस्तित्व सहज है । असहजता से हम कुछ भी करते हैं कहीं न कहीं उसका विरोध होता ही है। इसी तरह व्यापार हो गया लाभोन्मादी और इस कारण से ज्यादा कम वाला पिशाच पीछे पड़ गया। एक आदमी सोचता है, कम है । एक आदमी सोचता है, ज्यादा है और झगड़ा बना ही रहता है । इस तरह मानव को स्वस्थ रूप में, सुखी होकर कहीं जीना बना नहीं। इसलिए स्वस्थ रूप में जीने के लिए हर मानव को चेतना विकास मूल्य और मूल्यांकन विधि से जीना होगा। **उसका पहला चरण है समझदारी, दूसरा चरण है ईमानदारी, तीसरा चरण है जिम्मेदारी, चौथा चरण है भागीदारी।** इन चार चरण में मानव को अपनी समझदारी को प्रमाणित करना है । समझदारी के अर्थ में तीन चीजें हैं जीवन ज्ञान, सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान। जीवन के स्वरूप के बारे में आपको बतलाया । जीवन नित्य है, सुखाकांक्षी है और सुख को मानव परंपरा में ही प्रमाणित कर सकता है। इसके लिए प्रयत्न करने का पहला मुद्दा है जीवन को समझना जिसका नाम है ''जीवन-विद्या'' । विद्या का धारक-वाहक जीवन है । विद्या के स्वरूप में तीन भाग होता है - विद्या, विद्वता और विद्वान। विद्या :- संपूर्ण सह-अस्तित्व ही विद्या सहज स्त्रोत है । सह-अस्तित्व में ही विद्या है । सह-अस्तित्व में जीवन भी अविभाज्य है । विद्वता :- जो समझदारी होता है वह जीवन में स्वीकृत सह-अस्तित्व ही है । विद्वान :- मानव होता है। हर मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में है ।

तो समझने वाला वस्तु क्या है ? संपूर्ण सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व। यही विद्या जानने-मानने व जीने की वस्तु है। विद्वता का धारक वाहक वस्तु जीवन है और उसे प्रमाणित करने वाला मानव है । मानव शरीर और जीवन का संयुक्त रूप है । इस विधि से मानव की महिमा और जीवन की महिमा, सह-अस्तित्व की महिमा अपने आप से स्पष्ट होता है। अस्तित्व सहज रूप में है सह-अस्तित्व । सह-अस्तित्व सहज है विकास। विकास सहज है जीवन । जीवन सहज है जागृति। इसके लिए सह-अस्तित्व ही दृश्य एवं जीवन ही दृष्टा है । रासायनिक भौतिक रचना विरचनाएं एक दूसरे से अंतर्संबंधित क्रम है । ये सारी घटनाएं नित्य वर्तमान है । रासायनिक भौतिक विरचनाएं ना हो, ऐसा कोई क्षण आप नहीं पायेंगे। कोई दिन नहीं पायेंगे । कोई शताब्दी नहीं पायेंगे । इन सारी रचना-विरचनाओं का दृष्टा होता है जीवन । देखने-समझने वाला जीवन ही होता है शरीर कुछ भी नहीं समझता है। शरीर के जिस भाग में जीवन की जीवन्तता नहीं रहती उसे शून्य कहते हैं। उस जगह में ठंडा-गरम कुछ भी लगाओ समझ में नहीं आता ।

दूसरा अस्पतालों में आपरेशन करते समय बेहोश करने के बाद कुछ भी काट-पीट की जाती है कोई पता नहीं रहता है । इन आधार पर समझ में आता है जहां पर जीवन जीवन्तता बनाए रखता है वहीं संवेदनाएं समझ में आती है । जीवन अपनी तृप्ति के लिए जहां जिज्ञासु होता है उसके लिए ही वह सत्यता, यथार्थता, वास्तविकता समझता है। फलस्वरूप जीवन सुखी होने का आधार बनता है । इस कारण से हमको जीवन को समझने की आवश्यकता हुई । ये आवश्यकता अमीर, गरीब, बली, निर्बल, बड़े, छोटे सबको ही है ।

इसमें दूसरा सूत्र मिलता है जीवन-विद्या से कोई वर्ग-संघर्ष का आधार नहीं है। इसमें सर्वशुभ का आधार सह-अस्तित्व ही है । सबके निरंतर सुखी होने का स्रोत है । समाधानित रहने का प्रमाण है । ये सब चीजें अपने आप से उद्गमित होते हैं । मैं समझता हूँ मानव इसी को चाहता है ऐसे ही जीना चाहता

है । हम सबके साथ ही सुखपूर्वक जी सकते हैं । **अकेले कोई होता नहीं ये सिद्धान्त निकलता है।** इस धरती के संबंध को छोड़कर कोई मानव सुखी होने का प्रयत्न करें तो हो नहीं सकता। पानी से संबंध छोड़कर सुखी कोई हो नहीं सकता। किन्ही भी चीजों के संबंध को छोड़कर हम सुखी नहीं हो सकते तो जीवन संबंध को छोड़कर कैसे जियोगे । कैसे यांत्रिक हो जायेगा ? और भावनात्मक संसार से कैसे मुक्ति पायेगा। आप ही सोचो ये कैसे हो सकता है । हम बाजार में जाते हैं, सब्जी, अनाज, सोना, लोहा सबका भाव पूछते हैं । उस भाव का दृष्टा कौन है ? मानव ही होता है । जब सबका भाव है तो मानव का भी भाव होगा। मानव का भाव पता लगाना ही आवश्यकता रही है, उसको छोड़कर सबका भाव पकड़ लिया । जिनसे लाभ अवसर बना उन सभी भावों को पकड़ लिया जबकि मानव का भाव (मूल्य) समझ लें तो लाभ-हानि से मुक्त हो जायेंगे । मानव मूल्य समझने से, जीवन मूल्य समझने से, स्थापित मूल्य समझने से, शिष्ट मूल्य समझने से हमको लाभ-हानि की आवश्यकता शून्य हो जाती है । तब उपयोगिता मूल्य पर जीना होता ही है जिससे धरती की छाती का कितना बड़ा बोझ हल्का हो सकता है । लाभ-हानि के चक्कर में आदमी न तो अपने को बचाता है, पराया तो बचाना ही नहीं । लाभ-हानि के चक्कर में सबका कत्ल, चकनाचूर । इस झंझट से मुक्ति तो इसी विधि से आता है कि मानव मूल्यों को समझने में सहज होता है। उसके पहले ये होने वाला नहीं है। हम बहुत-बहुत सिर कूटे हैं किन्तु कुछ सुधार हुआ नहीं। इसकी गवाही है - साम्यवाद और पूंजीवाद। साम्यवाद भी अंततोगत्वा राष्ट्रीय लाभ के लिए जूझा, लाभ से मुक्त नहीं हुआ और पूंजीवाद सदा-सदा घोषित लाभवादी है । इसलिए तो लाभ-हानि से मुक्त होने के लिए मानव को अपने मूल्यों को समझने की आवश्यकता है । मानव मूल्यों को निर्वाह करने की आवश्यकता है। ये कैसे आयेगी जीवन विद्या समझ में आने से अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में समझ में आने से और मानवीयतापूर्ण आचरण में विश्वास होने से, मानव मूल्य चरितार्थ होता है। इसी का नाम है समझदारी।

मानव मूल्य जब हम चरितार्थ करना शुरू करते हैं तभी हम सही करने में (समर्थ) निष्णात होते हैं, पारंगत होते हैं । जब तक किसी न किसी उन्माद से जकड़े रहते हैं और हमको सही करने का कोई रास्ता मिलता नहीं । समझदार होने के लिए जीवन को समझना तथा सह-अस्तित्व में मानव अपने आचरण को समझना है । यही जीवन विद्या है। विद्या का दो भाग है - जीवन ज्ञान और सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान । इन दोनों का धारक वाहक जीवन ही है । जीवन ज्ञान का मतलब जीवन की जीवन को समझने की प्रक्रिया है। जीवन ही जब अस्तित्व को समझता है इस प्रक्रिया को अस्तित्व दर्शन कहा । सभी जीवन समान है सारे मानवों में जीवन एक समान है। समानता की बात कैसे आ गई। जीवन, जीवन को समझने की विधि में, प्रमाणित करने की विधि में, अस्तित्व को समझने की विधि में सह-अस्तित्व को प्रमाणित करने की विधि में यह आया कि सभी जीवन समान है।

समझने की व्यवस्था शरीर में कहीं भी हाथ-पैर, कान-नाक, चक्षु, मेधस, हृदय कहीं भी नहीं है । यह व्यवस्था जीवन में ही है। जीवन ही जीवन को और सह-अस्तित्व को समझने वाली वस्तु है और दूसरा कोई समझेगा नहीं । इस ढंग से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं मानव समझदारी व्यक्त करने के लिए (प्रमाणित करने के लिए) शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में होना जरूरी है । यह केवल शरीर या केवल जीवन रहने पर नहीं होगा । प्रमाणित करने का केन्द्र बिन्दु हुआ व्यवस्था में जीना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना । यही समझदारी की सार्थकता है । हम तब व्यवस्था में जीना ही चाहते हैं ये प्रक्रिया जीवन सहज ही है। ये कोई लादने वाली चीज नहीं है ।

सह-अस्तित्व को समझने के क्रम में अस्तित्व स्वंय सह-अस्तित्व है क्योंकि सत्ता (व्यापक) में सम्पृक्त (डूबी, भीगी, घिरी) प्रकृति ही संपूर्ण अस्तित्व है । प्रकृति अपने में एक-एक गिनने योग्य वस्तु है । गिनने वाला मानव है । ये गिनने योग्य वस्तु प्रकृति में जड़ प्रकृति और चैतन्य प्रकृति सब हैं । छोटा सा सूत्र

है - समझदारी से मानव सुखी, नासमझी अर्थात् जीव चेतना में जीता हुआ मानव दुखी । अभी तक सारा संसार जूझता रहा । पहले जूझता रहा जीवों से, तप करो, योग करो, सन्यासी हो जाओ तो सुखी हो जाओगे । लोग इसका भी प्रयोग किए कुछ प्रमाण मिला नहीं, परंपरा बनी नहीं। दूसरी बार ये जूझे कि खूब वस्तु को इकट्ठा कर लो सुविधा से सुखी हो जाओगे । उससे भी सुखी हुए नहीं । दोनों बातों से कोई सुखी नहीं हुआ । तब सोचने की बात है इसी क्रम में निकल कर आया कि समझदारी से समाधान, समाधान से सुखी। समझदारी से सही कार्य-व्यवहार होता है । सही में सभी एक होते हैं गलती में अनेक । हमारी गलती से आप सम्मत/सहमत हो जाएं आपकी गलती से हम सम्मत/सहमत हो जाए ऐसा होता नहीं है।

जो गलती है तो गलती है आपके लिए भी हमारे लिए भी । सही में हम एक ही हैं ये बात हमको समझ आ गयी। स्वत्व समझदारी में, से, के लिए ही हमारा कल्याण प्रशस्त होता है । समझदारी से ही सुखी, समृद्ध होते हैं, समझदारी में वर्तमान में व्यवस्था के रूप में जीते हैं। समझदारी से ही परम्परा रूप में सह-अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। **सुख के चार चरण है :- समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व में जीना ।** ये चार चीज प्रमाणित होता है तो हम सुखी हो जाते हैं । जब तक ये चारों चीज नहीं आती है तब तक हम समझदार परंपरा में, से, के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रयत्न के क्रम में ही हम तमाम जप-तप, पूजा-पाठ, योग-यज्ञ कर डाले हैं। बहुत सारी चीजें भी इकट्ठा किया । किन्तु सब लोग खुश नहीं हुए । सभी सुखी होने के लिए समझदार होना है। समझदारी सबमें पहुँचाया जा सकता है। समझदारी के लिए पहला चरण है अस्तित्व को समझना । अस्तित्व चार अवस्था में है । पहला पदार्थावस्था जिसमें मिट्टी, पाषाण, मणि, धातु आदि हैं ये सब अपने अपने आचरण में प्रमाणित हैं ही । दूसरी प्राणावस्था जिसमें सभी पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, औषधियां हैं ये सब भी अपने आचरणों में स्वयं प्रमाणित है । तीसरा जीवावस्था जिसमें मानव को छोड़कर सभी जीव, पक्षी, आते हैं, ये सभी भी अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में प्रमाणित हैं

ही । चौथा ज्ञानावस्था है जिसमें मानव ही है जिसका व्यवस्था होने में अभी प्रतीक्षा है । अब सोचिए सबसे विकसित अवस्था सबसे पीछे है । क्या मतलब है इसका ? दुखी नहीं होगा तो क्या होगा।

तो हमारा चरित्र भी विकसित के रूप में होने की आवश्यकता है। आचरण के रूप में हर वस्तु अपनी व्यवस्था को प्रमाणित करते हैं। मानव भी अपने आचरण के अनुसार प्रमाणित करेगा । ये एक सूत्र मिलता है। इस सूत्र को हम, आप, सबको जांचना ही है । जांचने जाते हैं तो अपने में कौन सा चीज समझने वाला है, उस चीज को पहले समझना । समझकर निर्वाह करने वाला क्या चीज है इसको समझना। और समझकर क्या पायेंगे उसको समझना। यह मानव का पहुँच है । मानव ज्ञानावस्था में गण्य है । ज्ञानावस्था में गण्य होने का क्या आधार है ? मानव जीव चेतना क्रम में जिसको समझा हुआ समझता है उसी ढंग से कार्य व्यवहार करता है। वह जाना नहीं रहता तब भी मानने की बात हर व्यक्ति में है और जीव चेतना में जीते हुए हम इसको जानते हैं ऐसा कहता है दावे के साथ जाना नहीं रहता माना रहता है लेकिन बोलते समय जानता हूँ कहता है, ये व्यतिरेक है ही क्योंकि मानव चेतना में जीते हुए सर्वशुभ के अर्थ में सत्यापित करना बनता नहीं । भ्रमित आदमी में यही व्यतिरेक है । 99% भ्रमित मानव शरीर को ही जीवन मान लिए हैं जिसके फलस्वरूप ही तमाम परेशानियाँ पैदा की है और परेशानियों से त्रस्त हुआ भी हैं, अब परेशानियों से मुक्ति पाने की इच्छा हुई है, उसी इच्छा के तहत यह कार्यक्रम है । चारों अवस्था में से मानव ही समझे और समाधानित हुए बिना सुखी नहीं हो सकता। पदार्थावस्था परिणामानुषंगी विधि से नियंत्रित है । प्राणावस्था बीजानुषंगी विधि से नियंत्रित है । जीवावस्था, वंशानुषंगी विधि से नियंत्रित है । नियंत्रित रहने का प्रमाण ही है व्यवस्था में रहना। निश्चित आचरण में रहना । मानव को छोड़कर प्रकृति की हर इकाई अपने निश्चित आचरण में है । मानव में भी निश्चित आचरण की जरूरत है । मानव संस्कारानुषंगी विधि से नियंत्रित होना है। संस्कार क्या है ? विकसित चेतना रूपी समझदारी है। समझदारी का प्रमाण है मानवीयता पूर्ण आचरण । जब मानव

समझदार होता है तो व्यवस्था में जीता है और तब इसका आचरण मानवीयता पूर्ण होता है । जब व्यवस्था में नहीं जी पाता तो अमानवीय आचरण कहलाता है। अब मानवीय आचरण और अमानवीय आचरण का परिभाषा बनता है । इसके बाद हमको पता लगता है इसकी जरूरत है या इसकी जरूरत नहीं है । जिसकी जरूरत होती है उसकी ओर आदमी की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है । इस तरह मानव के जागृत होने का रास्ता बना है। जीवन न पैदा होता है, न मरता है और शरीर रचित होता है और विरचित होता है । जीवन, जीवन सहज विधि से मानव शरीर को चलाना चाहता है । जीवन सहज विधि क्या है सुखी होने का समझ एवं कार्यक्रम । सारे पशु केवल जीने की आशा करते हैं वंशानुषंगी विधि से । जबकि मानव सुखपूर्वक जीना चाहता है किन्तु जब मानव वंशानुषंगी विधि से जीने जाता है तो परेशान होता है, इतनी ही बात है।

इसको अच्छे ढंग से हमको समझने की जरूरत है इसको अच्छे ढंग से प्रमाणित करने की जरूरत है । समझदारी ही प्रमाणित करने की वस्तु है । जब मैं आपसे समझकर दूसरों को समझा पाता हूँ तभी आप प्रमाणित होते हैं । इस तरह समझदारी परंपरा के रूप में बहती है । नासमझी परंपरा में बह नहीं सकती । समझदारी की वस्तु में विविधता नहीं होती । विविधता होती है तो प्रस्तुति में। इसलिए पीढ़ी दर पीढ़ी और सुदृढ़ होगी, प्रखर होगी । सही करने का तरीका और प्रखर होता जाता है । सही करने की सार्थकता और सुलभ हो जाती है। सर्वमानव के लिए इसकी आवश्यकता है । इसलिए समझदारी संपन्न मानव ही परंपरा को सही ढंग से आगे पीढ़ी को अर्पित कर स्वयं संतुष्ट हो सकता है आगे पीढ़ी संतुष्ट हो सकती है ।

मानव संस्कारानुषंगी इकाई है । संस्कार समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी का संयुक्त रूप में वर्तमान ही होती है। चूंकि गलतियाँ किसी को स्वीकार नहीं है इसलिए गलतियाँ संस्कार होती नहीं है । गलतियों को कोई स्वीकारता नहीं है किन्तु फंसा रहता है। कोई आदमी चाहे हजार गलती किया

हुआ हो किन्तु उसे वे गलतियाँ स्वीकृत नहीं है । चूंकि गलतियाँ किसी को स्वीकार नहीं है इसलिए उन्हें कोई आगे पीढ़ी को अर्पित नहीं करता, अतः नासमझी (गलतियों) की परम्परा नहीं बनती। तो इन तमाम गवाहियों के साथ यही निष्कर्ष निकलता है कि समझदारी ही परंपरा सहज स्त्रोत है । समझदारी के लिए ध्रुव बिन्दु है मानव चेतना रूपी समानता। समानता का ध्रुव है जीवन। जीवन में गठनपूर्णता और अक्षय बल, अक्षय शक्ति ये ही समानताएं है । मैं कितनी भी आशा, विचार, इच्छा करता हूँ मुझमें आशा, विचार, इच्छा करने की ताकत बनी ही रहती है । इस तरह से जीवन में अक्षय बल और शक्ति होने के लिए परिणामशीलता से मुक्त हुए बिना हो नहीं सकता ये तर्क विधि से जीवन की गठनपूर्णता को स्वीकारने की बात बनती है ।

मुझमें जब समझदारी स्वीकार हो गयी इसको कैसे जाँचा जाए । इसको व्यवहार में, कार्य में, व्यवस्था में जाँचा जाता है । मैंने व्यवहार और कार्य में कई बार जाँचा, व्यवस्था के रूप में हम स्वयं में जीना समाधान-समृद्धि के रूप में स्पष्ट है। समग्र व्यवस्था अभी भी बनी नहीं है मानव परंपरा में । अखण्ड समाज व्यवस्था के रूप में जीने के बाद हमारे अनुभव में सह-अस्तित्व में जो वस्तु जैसा है उसको वैसा ही समझने वाली बात का परम्परा रूप में प्रमाण ही है, अनुभव के लिए पुनः प्रमाण मिल जाता है । हमारा अनुभव बुलंद होता रहता है । इस ढंग से अनुभवमूलक विधि से जीने वाली बात आयी । इस तरह निष्कर्ष निकला मानव समझदारी पूर्वक अनुभवमूलक विधि से व्यवस्था में जीता है। जीवावस्था वंशानुषंगी विधि से प्राणावस्था बीजानुषंगी विधि से और पदार्थावस्था परिणामानुषंगी विधि से, व्यवस्था में रहते हैं।

इस मुद्दे पर पहुँचे कि समझदारी निश्चित है यह विकसित चेतना सहित जीना ही है । समझदारी का धारक वाहक निश्चित है, इस कारण समझदारी का प्रमाण निश्चित है। समझदार जीवन ही होता है । समझता जीवन ही है समझदारी का प्रमाण मानव परंपरा में होता है क्योंकि मानव शरीर में ही समृद्ध पूर्ण मेधस की रचना पायी जाती है और किसी परंपरा (जीव) में समझदारी का प्रमाण

मिलेगा नहीं । सह-अस्तित्व में पूरकता, उदात्तिकरण, विकास क्रम, विकास और जागृति ये सभी चीज समायी है । इन सभी बिन्दुओं को समझने की जो विधि है वह मानव में ही समाहित है, क्षमता भी मानव में ही समाहित है ।

अस्तित्व को समझने का मूल मुद्‌दा इतना ही है कि अस्तित्व सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही है । ये एक दूसरे के साथ ओत-प्रोत और सदा-सदा के लिए अविभाज्य, निरंतर विद्यमान, वर्तमान होना पाया जाता है । प्रकृति को व्यापक वस्तु से अलग करने की कोई विधि नहीं है, अलग करने का कोई प्रयोजन नहीं है, अलग हो नहीं सकते। इस तरह अस्तित्व में जो नहीं है उसकी हम कल्पना करके भी कुछ नहीं कर पायेंगे। अस्तित्व में जो है उसी को समझने की बात है। प्रमाणित करने की बात है। अस्तित्व ही चार अवस्थाओं में व्यक्त है।

यदि समझदारी को हम प्रमाणित नहीं कर पायेंगे तो ना हम परिवार व्यवस्था ना समाज व्यवस्था में जी पायेंगे। हर जगह में हम परेशान होते ही हैं । सात सौ करोड़ मानव का इस धरती पर हो गया लेकिन हमारा व्यवस्था में जीना अभी बना नहीं । संख्या बढ़ने या घटने से आदमी समझ गया हो ऐसा भी कुछ नहीं है । **मानव परंपरा में क्या प्रयोजन है : समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सहज प्रमाण । सह-अस्तित्व विधि से हम पूरक विधि से जी पाते हैं। अभय विधि से वर्तमान में विश्वास करते हैं । समृद्धि विधि से हम परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर पाते हैं। समाधान पूर्वक ही न्यायपूर्वक जी पाते हैं ।**

मानव परंपरा में अभी तक जो प्रयत्न किया आदर्शवादी विधि से और भौतिकवादी विधि से हम दोनों विधि से समझदारी को पाये नहीं । उसका मूल कारण है अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में समझ में नहीं आना। सह-अस्तित्व में जीवन व जीवन जागृति को समझने में भूल हो गयी फलस्वरूप जीवन एवम् समझदारी की परंपरा बनी नहीं । जब परंपरा बनी नहीं तो व्यवस्था में जीना कहाँ से आयेगा । समझदारी के अभाव में मानव, मानव के साथ न्यायपूर्वक और

प्रकृति (जीव, वनस्पति, पदार्थ) के साथ नियमपूर्वक, संतुलित रूप से जीना बना नहीं । इसी के कारण अनुपम नैसर्गिकता को हनन करता रहा ।

मानव को न्याय मिला नहीं। बड़े-बड़े न्यायालयों के न्यायाधीशों से पूछा गया तो उन्होंने कहा हम फैसला करते हैं न्याय नहीं करते । इस स्थिति में जब न्यायालय, न्याय को नहीं जानता है तो उसे न्यायालय कहना कितना सच होगा और उन्हीं न्यायालयों में कहा जाता है सच बोलो । अब कहाँ तक सच्चाई है न्यायालय में क्या सच्चाई को खोजा जाए । इसी तरह कार्यालय में कार्य क्या होता है ? गलतियों को खोजना, अपराध को खोजना और उनको गलतियों और अपराध से रोकना । इसी काम के लिए सारे सरकारी तंत्र में कर्मचारी नियोजित हैं।

मानव जागृत होने के लिए मूल वस्तु 'समझदारी' है । हर मानव को यदि समझदारी पहुँच पाता है तो मानव न्यायपूर्वक जी सकेगा । न्यायपूर्वक जीने के साथ समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व अपने आप से आते हैं । बिना न्याय पूर्वक जिये समाधान आयेगा नहीं। इससे पता लगता है मानवीयता का जो रीढ़ है वह न्याय है । न्याय सर्वप्रथम समझदार परिवार में प्रमाणित होता है, फिर समाज में और पूरी धरती पर सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होता है । न्याय में जीने से मानव तृप्त रहता है, सुखी रहता है, समाधानित रहता है, वर्तमान में विश्वास सुदृढ़ होता जाता है और हमारे व्यवहार में निरंतर प्रखरता, निखार प्रकट होता है। यह सब चीजें न्याय पूर्वक जीने से अनायास ही उपलब्ध होती है। जिसके लिए कहते हैं यह बहुत पुण्य से मिलेगा। पुण्य का मतलब हमको जो समझ में आया वह है समझदार होना । मानव समझदार होने की परंपरा में अपनी योग्यतायें, क्षमतायें, पात्रतायें, अपने आप से प्रमाणित करना शुरू करता है । क्षमता अर्थात् वहन करने वाली क्रिया । वहन क्या करता है ? या तो जागृति का या भ्रम का । मानव जब जागृत हो गया तब भ्रम अपने आप विदा हो जाता है । मानव संस्कारानुषंगीय इकाई है । समझदारी या भ्रम परंपरापूर्वक ही आता है । मानव

संतान में उसकी परंपरा जन्म से ही विद्यमान होने के कारण वे गुण उसमें प्रचलित प्रेषित हो जाते हैं। इसके बाद आता है पुरूषार्थ और परमार्थ । पुरूषार्थ, परमार्थ के आधार पर मानव समझदार होकर भ्रम से मुक्त होता है । भ्रम से मुक्ति का तात्पर्य जीवन जागृति पूर्वक जीने के कार्यकलाप। अभी तक परंपरा से हमको जो कुछ शिक्षा मिली है वह है शरीर सापेक्ष जीना इसका गवाही है लाभोन्माद, कामोन्माद और भोगोन्माद के लिए पढ़ाते हैं । जबकि मानव, जीवों पशुओं से भिन्न है, भिन्न प्रकार की प्रवृत्ति वाला है। जीवन के कारण मानव में बहुमुखी अभिव्यक्ति है । मानव समाधान चाहता है कोई पशु-झाड़-पत्थर समाधान नहीं चाहता। मानव समृद्धि चाहता है कोई पशु-पक्षी समृद्धि नहीं चाहता। किसी भी जानवर में, शेर, गाय, सांप, सुअर, आदि में भी संग्रह की प्रवृति नहीं है । चींटी भी संग्रह के उद्देश्य से संग्रह करती है ऐसा कुछ नहीं है । संग्रह के लिए प्रवृति है ऐसा नहीं है। वस्तु मिलता है इकट्ठा किया रहता है। मानव में जानबूझकर संग्रह-सुविधा की प्रवृत्तियाँ होती है उसका कारण भोग अतिभोग की वासना है । इस आधार पर समाधान और व्यवस्था लक्ष्य न होकर संग्रह सुविधा हमारा लक्ष्य हो गया और उसके लिए प्रिय, हित लाभ दृष्टिकोण रहा और फलस्वरूप हम दुखी होते रहे, संघर्ष करते रहे, प्रताड़ित होते रहे ।

इस परेशानी से छूटने का एकमात्र उपाय है जीवन जागृति और सह-अस्तित्व को समझें और मानवीयतापूर्ण आचरण को समझें । मानव ही अस्तित्व में सर्वोच्च विकसित इकाई है शरीर के रूप में और जीवन के रूप में । जीवन अपने अस्तित्व को और जागृति को प्रमाणित करने के लिए शरीर को प्रयोग करता है । प्रयोग करने के समय में वह बराबर शरीर को जीवंत बनाये रखता है बाद में शरीर को ही जीवन मान लेता है फलस्वरूप जीव चेतना में जी के भ्रमित होता है और प्रमाणित करने के लिए पुनः शरीर को संचालित करता है । इस ढंग से कई बार शरीर को छोड़ने से तो परेशान होने की बात है । इसमें पाप पुण्य नाम की कोई चीज नहीं होती है । समझदारी या नासमझी ही होती है । समझदारी परंपरा से ही आता है । समझदारी को परंपरा में ही पाना है । कोई एक व्यक्ति

समझदार होने से संसार तर जायेगा ऐसा नहीं हो सकता। ऐसी कल्पना ने ही हमको भयभीत, निरीह बनाया। मानवीयतापूर्ण आचरण में हर मानव अपने में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में जी पाता है । इस तरह जीने से हमारे तन, मन, धन का सदुपयोग, सुरक्षा करना भी बनता है और जब ये दोनों सजते हैं तो उस स्थिति में संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति भी अपने आप से प्रमाणित होता है । इस ढंग से मूल्य, चरित्र, नैतिकता के संयुक्त रूप में मानव का आचरण व्याख्यायित होता है। तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा होना ही नैतिकता है । संबंधों को पहचानने की विधि से ही मूल्यों का निर्वाह होता है । जैसे कोई भी आदमी अपने पिता के संबंध को, माता के संबंध को गुरू के संबंधों को व्यवस्था के अर्थ में पहचानते हैं । मूल्य (भाव) अपने आप बहने लगते हैं फलस्वरूप मूल्यों का निर्वाह होता है। जहाँ संबंधों को पहचानते नहीं हैं वहाँ कोई मूल्यों का बहाव होता नहीं है । उदाहरण रेल के डब्बे में कोई बैठा है एक अजनबी आता है तब उनका हाथ पैर अपने आप लंबा हो जाता है इच्छा होती है यहाँ कोई न बैठे। वहीं थोड़ी देर बाद कोई पहचान का आदमी आ जाता है तो अपने आप से उठकर खड़े हो जाते हैं उनको बैठा देते हैं इस तरह संबंधों की पहचान एक बड़ा काम है । संबंधों के बारे में अध्ययन प्रयोजन के आधार पर होता है । जैसे मां का संबंध पोषण प्रधान रूपी प्रयोजन के आधार पर, पिता का संबंध संरक्षण प्रधान रूपी प्रयोजन के आधार पर अध्ययन किया जाता है । ये संबंध सभी पहचानने में आ जाये उसके बाद मानव गलती नहीं करता । बिना संबंध पहचाने गलती करेगा ही।

प्रचलित वर्तमान राजकीय तंत्र, धर्म तंत्र प्रचार माध्यमों को देखने से पता लगता है सब अपराधियों के लिए बना है । ये दोनों अपराधियों को तारने में अपने-अपने ढंग से लगे हैं । ये सब तंत्र मानव को समझदारी दे नहीं पाया । हर मानव समझदार होना चाहता है । ईमानदार होना चाहता है । ईमानदारी का रास्ता दिखा नहीं पाये । हर आदमी जिम्मेदार होना चाहता है । जिम्मेदारी का प्रयोजन परंपरा में दे नहीं पाये । लोगों ने शुभ की कामना की है सबका शुभ हो, सबके

परिवार हो, सबका मंगल हो, इस प्रकार की बातों को तो सब लोग दोहराए है । किन्तु कहने मात्र से, दोहराने मात्र से, तो रास्ता मिलता नहीं। जिस किताब में लिखा रहता है सबका शुभ हो उसी में लिखा रहता है सारा संसार झूठा है और असली माँ-बाप ईश्वर है उन्हीं के शरण में जाना चाहिये इससे कल्याण हुआ नहीं। असली माँ-बाप के पास जाने के बाद मानव पाया नहीं तब कल्याण कहाँ-किसका होगा । इस सब बात से कोई प्रयोजन निकलता नहीं । समझदार होने पर ही आदमी का प्रयोजन स्पष्ट होता है। सभी संबंधों में प्रयोजन निहित रहता ही है। क्या प्रयोजन है ? समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को सफल बनाने के अर्थ में ही प्रयोजन है । सारे संबंधों का प्रयोजन इसी से जुड़ा रहता है इसमें जुड़ने से परंपरा बन जाती है। समझदारी की ही परंपरा होगी नासमझी की कोई परंपरा अखण्ड होगी नहीं। इसलिए अभी तक कोई परंपरा बनी नहीं सर्व शुभ के अर्थ में। वर्तमान शिक्षा में जब व्यक्ति पढ़कर तैयार होता है स्वयं को सबसे बुद्धिमान मानता है । संसार को मूर्ख मानता है । ऐसे स्नातक हर वर्ष करोड़ों बनते हैं । एक-एक ऐसे स्नातक को कैसे समझदार बनाया जाये ? कहां से इतने डाक्टर लाया जाये जो इनको ठीक कर सके ।

स्वयं समझे बिना कोई स्वीकार करता नहीं । इसका गवाही मैं स्वयं हूँ। हमारे परिवार में वेदमूर्ति, बगल में वेदमूर्ति, पूरा गाँव में वेदमूर्ति किन्तु हमें परिवार के लोग वेद नहीं पढ़ा पाये क्योंकि हम पढ़ना नहीं चाहे । किन्तु, इस धरती पर समझदार हर मानव बनना चाहता है । इस आधार पर हर मानव समझदार होने की पूर्ण संभावना है। इस प्रवृत्ति को देखकर ही इस अभियान को शुरू किया। हर मानव का समझदार बनाने का भी अरमान है इस सच्चाई के साथ शुरूआत किये हैं । इस शुरूआत से मानव को जो लोग समझ चुके हैं उनको राहत मिली है उनमें वे सब गुण पैदा हुए हैं जिन्हें हम मानवीयतापूर्ण रूप में पहचानते हैं ।

नैतिकता का मूल तत्व जो तन, मन, धन रूपी अर्थ को प्रयोजन के अर्थ में नियोजित करना है । जिसे सदुपयोग कहते हैं। सदुपयोग दो अर्थों में होता है - 1. सेवा और उत्पादन में तन, मन, धन का नियोजन। 2. संबंधों के साथ प्रयोजन

को सफल बनाने के लिए तन, मन, धन का अर्पण-समर्पण रूप में सदुपयोग ।

जिसका सदुपयोग किया उसका सुरक्षा हो गया । जिसके लिये हम सदुपयोग किया अर्थ का उसका सुरक्षा हुआ । यही हमारा सदुपयोग और सुरक्षा का अर्थ है । समाधान के लिये, समृद्धि के लिये, वर्तमान में विश्वास पूर्वक व्यवस्था के लिये, सह-अस्तित्व के लिये तन-मन-धन रूपी अर्थ को नियोजित करने से उसका सुरक्षा हुआ । फलस्वरूप हमारे धन का सदुपयोग हुआ। सदुपयोग हुये बिना सुरक्षा और सुरक्षा के बिना सदुपयोग होगा नहीं। सुरक्षा सदुपयोग सदा सदा के लिए शुभ होता है। सद्प्रवृत्तियों में हमारे तन, मन, धन को नियोजित करने की आवश्यकता बनी रहती है, हमारे जागृति के अर्थ में है ।

सह-अस्तित्व में कोई समझदार इकाई हो सकती है तो वह मानव ही है । मानव, जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में प्रमाणित है । मानव शरीर की वंश परंपरा है । जीवन सह-अस्तित्व सहज रूप में जीवन गठनपूर्ण परमाणु के रूप में विद्यमान है इसमें मानव का कोई योगदान नहीं है। शरीर में मानव परंपरा का योगदान है। यही व्यवस्था है । जीवन और शरीर के संयोग की आवश्यकता केवल जीवन अपनी जागृति को प्रमाणित करने के अर्थ में ही है और जीव शरीरों में समझदारी प्रमाणित करने की व्यवस्था नहीं है। इसलिये मानव संस्कारानुषंगीय इकाई के रूप में समझ में आता है । अस्तित्व में मानव को छोड़कर तीनों अवस्थायें परस्पर पूरक है। मानव भी पूरक होने की आवश्यकता हो गई है । पूरकता के रूप में ही मानव का व्यवस्था में जीना बन पाता है यह व्यक्तिवाद, भोगवाद के आधार पर कभी नहीं बन पाता है । विगत के दोनों चिंतनों भौतिकवाद और विरक्तिवाद से मानव **व्यक्तिवादी** हो गया । भौतिकवादी विधि से व्यक्ति **भोगवादी** होता है। फलस्वरूप व्यक्तिवादी होता है। विरक्तिवादी तो व्यक्तिवादी होता ही है । इस प्रकार ये दोनों विचार से समाज बनने का सूत्र निकला नहीं बल्कि समाज विरोधी होना ही हुआ। जबकि आदमी समाज में जीना चाहता है । सह-अस्तित्व में जीना चाहता है । समृद्धि पूर्वक जीना चाहता है समाधान पूर्वक जीना चाहता है । तीनों विचारों (सह-अस्तित्व, समृद्धि और

समाधान) प्रयोजनों को पूरा करना मानव की जिम्मेदारी है ।

समझदारी के बाद जिम्मेदारी आ ही जाती है । जब जिम्मेदारी के पास जाते हैं तो स्वाभाविक रूप में हम परिवार मानव हो जाते हैं, सामाजिक हो जाते हैं । फलस्वरूप हम सार्वभौम होते हुए प्रमाणित होते हैं । इस वैभवशाली परंपरा की आवश्यकता है । आशा के रूप में हर व्यक्ति व्यवस्था चाहता है । आकांक्षा के रूप में भी व्यवस्था चाहता है। हमारे अनुसार इच्छा के रूप में भी व्यवस्था चाहता है किन्तु इच्छा में उसकी वरीयता क्रम नीचे है, इसके ऊपर और बहुत सी चीजें है । इसलिए व्यवस्था की तीव्र इच्छा नहीं हो पाती । फलस्वरूप आदमी समर्पित होने में असमर्थ रहता है । जीव चेतना विधि से मानव विवश हो जाता है। क्या किया जाए ? जो तत्काल समझने को तैयार हैं उन्हीं को पारंगत बनाया जाए। उन्हीं से शिक्षण संस्थाओं में मानवीय शिक्षा का व्यवहारान्वयन किया जाए, बच्चों में संस्कार डाला जाए । बच्चों में संस्कार डालने से घर परिवार में स्वभाविक रूप में परिवर्तन होना ही है। इस तरह शिक्षा का मानवीकरण की आवश्यकता है शिक्षा सार्थक होना ही व्यवस्था दूसरी योजना है ।

पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था की इकाईयाँ मानव के लिए पूरक हैं। किन्तु मानव उनके लिये पूरक होना विचाराधीन है । उसको पूरा करने की आवश्यकता है। तभी मानव का व्यवस्था में जीने का प्रमाण मिल पायेगा।

जागृत जीवन सहज मूल्य है सुख, शांति, संतोष, आनंद । जीवन सहज मूल्य से मानव लक्ष्य सफल होता है। मानव लक्ष्य है समाधान, समृद्धि, अभय व सह-अस्तित्व । मानव लक्ष्य प्रमाणित होता है जीवन मूल्य प्रमाणित होता है । समाधान = सुख। जहाँ-जहाँ हम समाधानित रहते हैं वहाँ-वहाँ सुख का अनुभव करते हैं। जहाँ पर समाधानित नहीं है वहाँ हम पीड़ित होते हैं। उसके बाद परिवार में हम जीते हैं समाधान समृद्धि पूर्वक प्रमाणित होने की स्थिति में शांति अनुभव करते हैं। व्यवस्था में जीने के अर्थ में संतोष-आनंद अनुभव करते हैं । अपनी

समझदारी को प्रमाणित करने के अर्थ में आनन्द अनुभव करते हैं। इस प्रकार, इसमें हम सब प्रमाणित हो पाते हैं तब परंपरा में समझदारी सहज प्रमाण रहेगी। इस क्रम में हम सुख, शांति, संतोष, आनन्द को अनुभव करने के योग्य है।

जीवन अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्न है। इस विधि से समाधान के बाद समाधान को प्रकाशित, प्रमाणित निरंतर करते ही रहते हैं और जीवन तृप्त बना ही रहता है। 'जीवन' स्थिति में बल व गति में शक्ति है। गति में होने वाली क्रियाएं एक दूसरे के परस्परता में प्रमाणित होते है। स्थिति में रहने पर क्रियाओं का अनुभव होता है। हम जितने भी आस्वादन किये इससे हम तृप्त हुये कि नहीं ये हमको पता लगता है। जितना हम तुलन किया उससे हमको तथ्य मिला कि नहीं। सच्चाई को हम साक्षात्कार अनुभवपूर्वक (चिंतन) किया, बोध विधि से चिंतन किया, अनुभव किया। इससे तथ्य मिला कि इस बारे में हम निरंतर प्रयोजन के अर्थ में परीक्षण करते रहते हैं। परीक्षण करना ही होगा, करेंगे ही, दूसरा कोई रास्ता नहीं है। इन पाँचों अवस्थाओं में तृप्ति ही कुल मिलाकर सतत सुखी होने का रास्ता बनता है। इसी को सुख, शांति, संतोष, आनन्द नाम देते हैं। इन्हीं पाँच अवस्थाओं में प्रमाणित होने से मानव का वैभव स्वयं में स्वराज्य के रूप में प्रतिष्ठित रहता है। मानव मानवीयता से परिपूर्ण होकर वैभवित होना ही राज्य का मतलब है। व्यवस्था में जीना ही राज्य है, स्वराज्य है। स्वयं प्रेरित होकर व्यवस्था में जीना ही स्वराज्य है। इस प्रकार से, मानवीयतापूर्ण आचरण ही इसकी व्याख्या है। स्वयं में, परिवार में, समाज में, प्रकृति में, व्यवस्था में जो संबंध है उसको सार्थक बनायेगा यही मानव की जागृति सहज वैभव है। संबंध और मूल्यों को सार्थक बनाने के क्रम में ही हम वर्तमान में विश्वास कर पाते हैं। संबंधों को पहचानते नहीं है तो वर्तमान में जीते नहीं है तो विगत में जाते हैं विगत वर्तमान होता नहीं। (विगत के साथ जीना बनता नहीं) भविष्य को सोचते हैं, भविष्य भी वर्तमान होता नहीं। इस तरह से आदमी को कहीं ठौर मिलता नहीं। फलस्वरूप भटकता रहता है। भटकना कोई चाहता नहीं है। परंपरा में दिशा और लक्ष्य निर्देश की व्यवस्था है नहीं। हर मानव चेतना

विकास मूल्य शिक्षा से ही समझदार होकर प्रमाणित परम्परा हो सकता है । हर मानव के आचरण में आ सकता है और मानव त्व मूल्यांकित हो पाता है । मानव को समझदारी को सफल बनाना है यही उसका वैभव है, यही मानव का ऐश्वर्य है इसी ऐश्वर्य के साथ मानव अपनी परंपरा को निरंतर सुखमय बना सकता है । सभी पशु संसार, जीव संसार, वनस्पति संसार, पदार्थ संसार के साथ संतुलनपूर्वक व्यवहार कर सकता है उससे जो पूरकता है उसके लिए स्वयं कृतज्ञ होकर उसका उपयोग, सदुपयोग कर सकता है। प्रयोजनशील बन सकता है।

मानव के साथ तो संबंध मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति होती है। तृप्ति हमारा वर है, अतृप्ति हमारा वर नहीं है। हर व्यक्ति तृप्त होने के आसार में समाधान, समृद्धि, वर्तमान में विश्वास और व्यवस्था में जीना सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना ही है । सत्य का स्वरूप इस ढंग से आया अस्तित्व ही परम सत्य है, निरंतर रहने वाली वस्तु अस्तित्व ही है और अस्तित्व, सह-अस्तित्व स्वरूप है, सह-अस्तित्व ही निरंतर प्रभावशील है । फलस्वरूप विकास व जागृति प्रकट होता है, विकास क्रम होता है । विकसित हो जाते हैं, जीवन्त हो जाते हैं । विकासक्रम में भौतिक-रासायनिक वस्तु के रूप में निरंतर कार्यरत है। जीवन कितनी संख्या होना है इसका निश्चयन भी सह-अस्तित्व सहज विधि से आता है भ्रमित मानव क्रम से आता नहीं । अस्तित्व स्वयं अपनी विधि से चारों अवस्थाओं को प्रकाशित कर चुका है। इसमें मानव का कोई योगदान नहीं है । मानव स्वयं को अन्य प्रकृति के साथ पूरक होने के प्रमाण रूप में प्रमाणित कर नहीं पाया बल्कि उल्टे शोषण करता रहा है। शोषण से मानव कैसे सुखी होने की कामना किया, यह सोचने का मुद्दा है। शोषण से सुखी होने के बारे में सब राज्य, सब समुदाय, सब धर्म, अधिकांश परिवार सोचते हैं । जहाँ तक राज्य और समुदाय की मान्यता है शोषण पूर्वक ही सुखी हो सकता है। आज तक यही अंतिम बात है और विज्ञान भी इसका समर्थक है कि संघर्ष और शोषण पूर्वक ही मानव अपने अस्तित्व को बचाये रख सकता है। अस्तित्व से यहाँ मतलब अपनी जाति, समुदाय से है । संघर्ष का मतलब है जिसकी लाठी उसकी भैंस। संघर्ष करना ही विकास माना

जाता है । जो देश ज्यादा युद्ध कर सकता है, ज्यादा व्यापार बुद्धि का उपयोग कर पाते हैं, ज्यादा शोषण कर सकता है उसे विकसित देश कहा जाता है। जबकि विकसित देश वही है जो जागृत हो गया है । व्यवस्था में है, समाधानित है, समृद्ध है, अपने में विश्वास करता है, सह-अस्तित्व को समझता है । जीवन, जीवन को समझने वाला और जीवन अस्तित्व को समझने वाला तरीका भिन्न है । जहाँ तक भौतिक रासायनिक वस्तुएं है इनको हम प्रयोगपूर्वक उपयोगिता के आधार पर पहचान लेते हैं। उपयोगिता को हम सामान्य आंकाक्षा और महात्वाकांक्षा के रूप में पहचानते हैं । सामान्य आकांक्षा है आहार, आवास, अलंकार (साधन)। महात्वाकांक्षा है -दूरगमन, दूरश्रवण, दूरदर्शन। इनमें से अधिकांश भाग तो पहचान लिए गये हैं उत्पादन भी कर लिए हैं। इसको सर्वसुलभ करने का प्रयत्न भी व्यापार विधि से किए हैं । व्यापार विधि में लाभ की प्रतीक्षा रहती ही है ।

जीवन का विश्लेषण क्रिया के आधार पर हम यह पहचान पाते हैं कि हमको किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता है। फिर उन आवश्यकताओं को पहचान कर हम उत्पादन करते हैं और समृद्धि का अनुभव करते हैं । जैसे ही हम समृद्धि का अनुभव करते हैं वैसे ही हम व्यवस्था में जीना शुरू कर देते हैं इसलिए हमारे विद्यार्थियों को सर्वप्रथम स्वायत्त बनाने की जरूरत है और उसके बाद परिवार में प्रमाणित होने योग्य प्रवृत्ति और फिर समग्र व्यवस्था में जीने की आवश्यकता है। इन तीनों स्थितियों में प्रमाणित होना मानव का सौभाग्य है। ऐसा सौभाग्यशाली बनने के लिए मानव की स्वयंस्फूर्त आवश्यकता ही एकमात्र आधार है। यदि ऐसी आवश्यकता बनती है तो इस प्रस्ताव को मनोयोगपूर्वक, अध्ययन पूर्वक अपने को प्रमाणित करना सहज है।

तो हम समझने की कोशिश किए, समझदारी क्या है ? समझने वाला कौन है समझदारी के लिए वस्तु क्या है ? समझने वाला वस्तु 'जीवन' ही है। समझने के लिए वस्तु 'अस्तित्व' है, 'जीवन' है एवं 'मानवीयतापूर्ण आचरण' ही है। अस्तित्व को समझने के क्रम में अस्तित्व में विकास को समझना है । रासायनिक और भौतिक रचना, विरचना को समझना है । रासायनिक और भौतिक रचना,

विरचना पदार्थावस्था और प्राणावस्था के रूप में अस्तित्व में विद्यमान है । ये सभी वस्तुएं एक स्वरूप में होकर दूसरे स्वरूप में परिवर्तित होते रहते हैं जैसे पेड़ पौधे कुछ काल पश्चात स्वयं सूखकर मिट्टी बन जाते हैं । इसी का नाम परिवर्तनशीलता है । यह परिवर्तन भौतिक रासायनिक पदार्थों में निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है । इसी तरह मानव एवं पशु शरीर रचना गर्भाशय में रचित होते हैं एवं कुछ काल पश्चात् विरचित होकर मिट्टी, पानी, हवा में परिवर्तित हो जाते हैं ।

इसके बाद समझने वाली वस्तु जीवन हमेशा एक सा रहता है। मानव शरीर में समझने वाली वस्तु केवल जीवन ही है। समझने के रूप में अस्तित्व को सह-अस्तित्व के रूप में ही समझा गया । सह-अस्तित्व के नजरिए में ही संपूर्ण परिस्थिति में हम व्यवस्थापूर्वक जी पाते हैं। व्यवस्था में जीना ही मानव का लक्ष्य है, व्यवस्था में जीना ही सुख है । अव्यवस्था में जीकर 'जीवन' समस्या से पीड़ित होता है । फलस्वरूप समाधान की खोज स्वाभाविक है जीवन में निरंतर शोध अनुसंधान प्रवृत्ति होता है। जीवन ही नहीं जड़ परमाणु में भी अनुसंधान होता रहता है। यही परिवर्तन के लिए कारक तत्व है । हर जगह सह-अस्तित्व में होने की प्रवृत्ति है । परमाणु अंश भी सह-अस्तित्व में होने की प्रवृत्तिवश ही परमाणु के रूप में और परमाणु अणु के रूप में गठित होते रहते हैं । अणु भी इसी प्रवृत्तिवश अणुपिण्डों के रूप में गठित होते रहते हैं। इस तरह से अनंत ग्रह, गोल अस्तित्व में होने की बात आदमी को समझ में आती है । जड़ प्रकृति में विभिन्नता का मूल रूप परमाणु में निहित परमाणु अंशों का संख्या भेद है । इन विविध वस्तुओं की विविधता के आधार पर, स्थापना के आधार पर ही इनसे रचित रचनाओं में विविधता का होना पाया जाता है । जैसे वनस्पतियों में अनेक प्रकार की रचनाएं हैं। जिन-जिन रचनाओं से रचित वस्तुएं हैं वे अपने स्वाभाविक रूप में अपने स्वरूप में वैभवित है । उसका एक भौतिक प्रयोजन है जो सह-अस्तित्व में भागीदारी ही है। रचना के मूल में जो द्रव्य है वे भी सह-अस्तित्व में होने की ही महिमा है । इस महिमा के आधार पर संपूर्ण अस्तित्व विद्यमान है, प्रमाणित है, प्रकाशित है । इस अस्तित्व में ही मानव एक भाग है। सह-अस्तित्व में मानव

अविभाज्य है । सह-अस्तित्व को छोड़कर मानव कहीं भाग नहीं सकता । भागने की जितनी कोशिश किया उतना ही परेशान हुआ। हर आदमी अपने में समाधान चाहता है उसके लिए हर आदमी शोध करता है। हर व्यक्ति व्यवस्था शोध करने का अधिकारी है । हर व्यक्ति जब शोधपूर्वक ही जीता है तब इसमें व्यक्ति को कर्म स्वतंत्रता अपने आप समझ में आता है । शोध का उद्देश्य स्पष्ट है, जीने का उद्देश्य स्पष्ट है । जीने का उद्देश्य एक ही स्थान पर ध्रुवीकृत होता है कि मानव सुख से जीना चाहता है। सुखी होने के लिए प्रक्रिया एक ही है, जीवन का उद्देश्य, मानव का उद्देश्य सम्पन्न होना चाहिए । समझदारी से जीवन का उद्देश्य सम्पन्न होना चाहिए । समझदारी से जीवन का उद्देश्य पूरा होता है । जीवन तृप्त होता है और तृप्त जीवन ही मानव के उद्देश्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व प्रमाण को बनाये रखने में समर्थ होता है । यही व्यवस्था में जीने का प्रमाण है । व्यवस्था में जीता है, चारों लक्ष्य उपलब्ध रहते हैं । ऐसी मानव परंपरा एक दूसरे के लिए उपकारी होती है । एक दूसरे को समझदार बनाना ही उपकार है फलस्वरूप सह-अस्तित्व का अर्थ परम्परा रूप में सार्थक हो पाता है। मानव परम्परा में सह-अस्तित्व को वर्तमान में बनाये रखना ही व्यवस्था है । सह-अस्तित्व के विपरीत जब भी कुछ होता है तो व्यवस्था में गड़बड़ी होती है । मानव कर्म स्वतंत्रता और कल्पनाशीलता वश कुछ भी गड़बड़ कर देता है । जैसा धरती को बहुत तंग किया गया । ये पता नहीं था कि इस गड़बड़ी से क्या परेशानी हो सकती है जब पता चला तो उसका उपाय नहीं रह गया। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता वश ही मानव हमेशा शोध अनुसंधानरत रहता है। शोध और अनुसंधान तभी सार्थक होता है जब वह व्यवस्था के लिए हो, समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के लिए हो । समझदारी से आदमी -

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन
4. व्यवहार में सामाजिक

5. व्यवसाय में स्वावलंबी हो जाता है।

इनको सद्‌गुण कहा जा सकता है। इन सद्‌गुणों के साथ मानव सामाजिक होता है । समझदारी को प्रमाणित करना ही विद्वता है । विद्वान जो कुछ भी है अस्तित्व सहज (वर्तमान) विद्यमान मानव ही होता है । हर एक इकाई में अपने में शोध होता रहता है लेकिन विद्वता की बात केवल मानव में ही होती है ।

अभी चार क्रियायें मानव में बतायी गयी जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना । इनमें से पहचानना, निर्वाह करना हर वस्तु में समाहित है । हर वस्तु दूसरी वस्तु को पहचान रही है। तभी निर्वाह कर रही है । एक परमाणु अंश भी दूसरे को पहचानता है फलस्वरूप वह व्यवस्था में रहते हैं । एक दूसरे के साथ रह पाते हैं, कार्य कर पाते हैं । फलस्वरूप सह-अस्तित्व में प्रकाशित हो पाते हैं । इसी प्रकार अणु से लेकर ग्रह गोल एक दूसरे को पहचानते हैं और निर्वाह करते हैं। इस ढंग से सभी पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था भी एक दूसरे को पहचानते हैं और निर्वाह करते हैं इसका प्रमाण भी प्रकृति में पूरकता विधि से स्पष्ट होता है। मानव केवल पहचानने और निर्वाह करने में तृप्त नहीं हुआ और इसमें शंकाएं पैदा हुई । मानव के साथ दो क्रियाएं और जुड़ गयी जानना, मानना। मानव जानने, मानने की क्रिया के आधार पर ही पहचानने, निर्वाह करने से आश्वस्त होता है । प्रयोजनों का सार्थकता का ही जानना, मानना होता है । प्रयोजनों को जानने मानने के क्रम में ही मानव सामाजिक हो पाता है। बिना जाने माने सामाजिक हो नहीं पाता है सह-अस्तित्व प्रमाणित होता नहीं है । मानव की बहुत बड़ी दरिद्रता का कारण यह भी है कि जानने मानने का अवसर रहते हुए भी जानना, मानना नहीं हुआ । मानव इस स्थिति में स्वयं दरिद्र रहता है औरों को भी दरिद्र बनाता है । मानव स्वयं अपनी दरिद्रतावश ही धरती को दरिद्र बनाया है । मैं समझता हूँ जो जानने मानने वाला भाग है उसको प्रखर बनाया जाना चाहिए । हर व्यक्ति में इस प्रखरता की संभावना है । हर व्यक्ति में इस प्रखरता की आवश्यकता है यह समीचीन है । समझदारी को प्रमाणित करना और परंपरा के रूप में प्रवाहित करना ही विद्या का मतलब है ।

जीवन की क्रियाओं को मूलतः पाँच भागों में देख पाते हैं । हर भाग में दो-दो क्रियायें होती है स्थिति और गति के रूप में। जैसे हर जीवन में 'आशा' नाम की क्रिया होती है जिसमें दो क्रियायें होती है चयन और आस्वादन । आस्वादन के लिये क्या चुनते हैं यह एक चयन क्रिया है । आस्वादन करते हैं यह भी एक क्रिया है ये दोनों जहाँ होती है उस भाग का मन नाम हैं । चयन क्रिया में हमारे आस्वादन के लिये क्या क्या चीज चाहिये मानव तमाम प्रकार की परिकल्पना किया है और तमाम प्रकार की चीजें इकट्ठा किया है और इकट्ठा करने में संलग्न है । हमने अभी तक सुविधा संग्रह के लिये इकट्ठा किया है । उसका कारण है कि सुविधा संग्रह के प्रयोजन को जानने-मानने के लिए ये हम जितना पीछे रहे हैं सुविधा संग्रह के लिये उतना ही विवश होते गये हैं । सुविधा संग्रह में कहीं तृप्ति बिन्दु नहीं मिला । जबकि इसके व्यवहारिक प्रयोजन को समझने पर समझ आता है कि यह शरीर के पोषण-संरक्षण के लिये आवास, आहार, अलंकार (साधन) की जरूरत के रूप में है । समाज गति के लिये दूरगमन, दूरश्रवण, दूरदर्शन की आवश्यकता स्पष्ट होती है । ये सभी चीजें उपलब्ध हो गई हैं और सुविधा-संग्रह के आधार पर मानव तृप्त नहीं हुआ । यह एक भारी विडंबना की बात है ।

जीवन की और दो क्रियाओं 'विश्लेषण' और 'तुलन' हैं। विश्लेषण क्रिया को जीवन अपने बलबूते पर जो कुछ भी हो सकता है करता ही है । तमाम विश्लेषणों में प्रयोजनों को ही पहचानने की बात आती है । प्रयोजन मूलतः समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व पूर्वक जी कर प्रमाणित करना है । इसके विपरीत ले जायें तो भोग, अतिभोग जहाँ मानव कहीं टिक नहीं पायेगा ।

अभी विज्ञान निष्कर्ष निकालता है सभी मानव कुछ देर में मर जायेंगे और धरती नष्ट हो जायेगी । वह हो ही जाना है। धरती की विधि से सोचें तो धरती सर्व-समृद्ध होने के पश्चात् ही मानव आवास के लायक होने के बाद धरती पर मानव का अवतरण हुआ । मानव को शनैः-शनैः जीव चेतना क्रम में जागृत होने का अवसर प्रदान किया । मानव जागृत होने के स्थान पर भोग-अतिभोग की ओर

अग्रसर हुआ। भोग-अतिभोग को दिशा बनाने के कारण मानव सुविधा-संग्रह के अंतहीन सिलसिले की ओर अग्रसर हुए । सबकी सुविधा संग्रह की हविश पूरा करने की सामग्री इस धरती में नहीं है । इसलिये कहीं ना कहीं यह हविश आदमी को डुबायेगी । इसलिये **सारे सुविधा संग्रह को प्रयोजन सम्मत करना जरूरी है।** प्रयोजन सम्मत करते हैं तो शरीर पोषण-संरक्षण और समाज गति ही निकलता है। समाज गति की ओर जाते हैं तो अखण्ड समाज में भागीदारी करना, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करना ही निकलता है । इन प्रवर्तनों में आदमी जीने जाता है तब समाधान-समृद्धि पूर्वक सुख-शांति सम्पन्न होकर जीना बनता है । इस विधि से अस्तित्व में जागृति को प्रमाणित करना ही जीवन का उद्‌देश्य है । इसमें अद्‌भुत स्रोत सफलता का आधार यही है कि हर व्यक्ति व्यवस्था में जीना चाहता है । श्रम पर्यन्त व्यवस्था का मूल तत्व भय और प्रलोभन है । जागृति के अनन्तर मूल्य, मूल्यांकन और उभयतृप्ति को पहचानना जिसके लिए समझदारी को विकसित करने की आवश्यकता है ।

जीवन का स्वरूप

मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, आत्मा का अविभाज्य स्वरूप 'जीवन' है ये कभी अलग-अलग होते नहीं है ।

मन का दो कार्य रूप है - चयन, आस्वादन। वृत्ति का दो कार्यरूप है - विश्लेषण, तुलन। चित्त का दो कार्यरूप है -चित्रण, चिंतन। बुद्धि का दो कार्यरूप है - ऋतम्भरा (संकल्प), बोध। आत्मा का दो कार्यरूप है - प्रमाणिकता, अनुभव।

ये दस क्रियाओं के रूप में हर जीवन सतत कार्यरत है । ये दस क्रियायें करते हुये जीवन भ्रम या जागृति के रूप में प्रमाणित होते हुये पाया जाता है । भ्रमित अवस्था में संवेदनशीलता से अनुप्राणित रहता है और दस क्रियाओं में से जीव चेतना वश साढ़े चार क्रिया ही कार्यरत रहते हैं। बाकी क्रियाओं को समझने की वस्तु रहती नहीं है इसलिये जीवन में अंतर्विरोध बना ही रहता है। ये साढ़े चार क्रियायें है - चयन, आस्वादन, विश्लेषण, चित्रण एवं आधा तुलन। चयन, आस्वादन संवेदनशीलता के आधार पर होती ही है । हाथ, पैर, नाक, कान, आँख, जीभ आदि को अच्छे लगने वाली वस्तु को अपनाते हैं और खराब लगने वाली वस्तु को छोड़ देते हैं । संवेदनशीलता के पक्ष में ही तुलन नाम की क्रिया करता है प्रिय, हित, लाभ के रूप में । इसी के अर्थ में विश्लेषण कर लेता है और इसके लिये चित्रण क्रिया को भी संपादित कर लेते हैं । कुल मिलाकर **इंद्रिय-संवेदना को ही जीवन मानते हुये हम जीने के लिये तत्पर हो गये हैं। इसी का नाम है 'भ्रमित जीवन'।** इससे अंतर्विरोध होता ही रहता है । ये ठीक है या गलत है या ज्यादा है कम है, इस तरह का सारा संकट मानव के सामने रखा ही रहता है। मानसिकता आदिमानव जैसी ही है। वस्तुएँ ज्यादा हो गई है। मानव मानसिकता के लिये और जो साढ़े पांच क्रियायें है उन्हें जागृत होने की आवश्यकता है वह समझदारी से जागृत होती है ।

पाँच संवदेनाओं और चार विषयों को पहचानने निर्वाह करने के लिए साढ़े चार क्रियायें पर्याप्त है, इसी में मानव पशु व राक्षसवत् जीता है। मानव त्व रूप में

जीना केवल साढ़े चार क्रियाओं से बनता नहीं । उससे संतुष्टि होती नहीं । अब जो मूल मुद्दा जीवन की सभी दसों क्रियाओं को व्यवहार में प्रमाणित करना ही जागृति है। थोड़े भाग को प्रमाणित करने से जागृति वाली बात बनती नहीं है । जैसे शरीर स्वस्थ है तो पाँचों ज्ञानेन्द्रिय और पाँचों कर्मेन्द्रिय सटीकता से एक दूसरे के तालमेल से कार्य करते रहते हैं । यदि इसमें से हाथ काम न करता हो पैर न काम करता हो लूला-लंगड़ा ही कहेंगे । उसको स्वस्थ आदमी कहेंगे नहीं ।

जागृति तब तक नहीं हो सकती जब तक जानने मानने की क्रिया को हम पहचानने, निर्वाह करने की क्रिया के साथ जोड़ नहीं पायेंगे । अभी तक संवदेनाओं को पहचानने निर्वाह करने की क्रिया विधि के साथ ये साढ़े चार क्रियाओं को हम सब प्रमाणित कर दिये, आगे की क्रिया व्यवहार में प्रमाणित होती है यही जागृति का आधार है। यह जानने मानने की विधि से ही होगी। मानवेत्तर संसार पहचानने निर्वाह करने के क्रम में नियमित रहता है, नियम के अनुसार कार्य करता है इस विधि से व्यवस्था है।

संवेदनशीलता पूर्वक जीने की जो पराकाष्ठा है वह जीव संसार में पूरा हो जाता है । यदि संवेदनशीलता में ही अंतिम मंजिल होती तो मानव के होने की जरूरत ही नहीं बनती है । अस्तित्व में निष्प्रयोजन की कोई स्थिति नहीं है । पूरे अस्तित्व में, सम्पूर्णता में एक तालमेल, एक सूत्रता, एक संगीतमयता पूर्वक व्यवस्था का स्वरूप है । हर गति, हर स्थिति, हर अवस्था एक सार्थकता सूत्र से जुड़ा ही है । सार्थकता क्या है व्यवस्था में आचरण होना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना । जीवन जब जागृत होता है अनुभव और प्रमाणिकता मूलक हमारा बोध संकल्प होता है और उसी के अनुरूप में चिंतन, चित्रण सम्पादित करना शुरू करता है। उसी आधार पर तुलन, विश्लेषण और चयन, आस्वादन होता है। अभी हम संवेदनशीलता को सर्वोपरि मूल्यवान मान करके हर विचार हर योजना को तैयार करते हैं । जबकि जागृति में मूल्य और मूल्यांकन ही आता है । यही जागृति का व्यवहारिक स्वरूप है। संवेदन-शीलता मूलक विधि से हमने जीने की कला को विकसित करने का काम पूरा कर लिया है। इस विधि से जीने के

लिए जो जरूरत की वस्तुएं है वे मानव को छोड़कर बाकी संसार है। जिसमें जीव, वनस्पति और पदार्थ संसार है। इन तीनों को आदमी ने कैसा उपयोग किया, आप सबको विदित है । इसमें कैसे ज्यादा से ज्यादा सफल हुए हैं ये भी विदित है । हम ये सब सफलता के लिए किसी को विफल होने की बात करते हैं तो असंतुलन होता है । हमने अभी तक जो सुविधा संग्रह का काम किया है उसमें धरती तंग हो गयी है। धरती को बचा पाना संभव है कि नहीं ये भी एक प्रश्न चिन्ह है । इस क्रम में जो कुछ भी अपराध धरती पर कर रहे हैं उसको रोकना ही पड़ेगा और अपराध विहीन विधि को समझना पड़ेगा । उसके लिए अभी जितनी भी विज्ञान की बात किये हैं अथवा कला और शिक्षा में प्रवेश हो चुकी है इससे अपराध मुक्ति नहीं हो सकता । इसमें डूबने की जगह है। इसमें धरती को नाश करने की जगह है, मानव एक दूसरे को तंग करने की जगह है। अभी तक हम बड़े-बड़े राज्य मिलकर के कोई सभा बना दिये हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ । जिसमें बहुत से सम्मेलन हुए पर आज तक यह निर्णय नहीं हो पाया कि सामरिक शक्ति अधिकार इस संघ में होना चाहिए या राष्ट्रों में होना चाहिए या नहीं होना चाहिए। समर होना चाहिए या नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार शिक्षा के लिए हर वर्ष में चार बार समीक्षा होती है। पुनः विचार, पुनः समीक्षा किन्तु आज तक यह तय नहीं हुआ कि मानव के लिए सुखद शिक्षा क्या होना चाहिए ।

बचपन से मैनें वेद विचारों का अध्ययन किया है कि हर मानव संतान सही करने का इच्छुक रहता है । न्याय पाने की आवश्यकता उनमें रहती है। सत्य वक्ता होता है । जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं वैसे-वैसे झूठ बोलना आ जाता है क्योंकि हम वातावरण ऐसा बनाएं हैं, झूठ बोले बिना रहा नहीं जाता । व्यापार में झूठ समाया ही हुआ है । राज्य शासन में झूठ है, शिक्षण में सच्चाई उभरती नहीं है । तो इस ढंग से आदमी कहाँ जायेगा। इस तरह से मानव परिस्थितियों से बाध्य होकर, तदनुसार व्यवहार व दिनचर्या को बनाता है । इस तरह मानव किसी लक्ष्य तक पहुँचा नहीं और न पहुँच सकेगा सभी बड़ी-बड़ी संस्थाएं, राज्य संस्थान सभी में बड़े-बड़े प्रोजेक्ट पड़े हैं पर हम संकट से छूट नहीं पाये ।

इस संकट से छूटने की आवश्यकता तो है किन्तु वह केवल तभी होगा जब आदमी समझदार होगा और यह जब भी होगा इस एक ही विधि से जीना होगा वह है मानवीयता पूर्ण आचरण । मूल्य, मूल्यांकन इसका संबंध सह-अस्तित्व सहज विधि से है । इसके लिए हम आपको कोई प्रयोगशाला नहीं बनाना है । ना कोई युद्ध करना है । संबंध के लिए प्रयोजन को अखण्ड समाज व्यवस्था के अर्थ में जानना-मानना जरूरी है उससे पहचानना-निर्वाह करना बन जाता है । जानना-मानना प्रयोजन का ही होता है । बिना प्रयोजन के जाने-माने, पहचानने-निर्वाह करने में भटकाव होता ही है । जैसे-धरती के संबंध में प्रयोजन को जानने में चूक गये । पर्यावरण के प्रयोजन को जानने में चूक गये जिसके कारण धरती और पर्यावरण की समग्रता को समझ नहीं पाये और मानव जाति ने धरती का भट्ठा बैठा दिया । इसको भली प्रकार से समझने की आवश्यकता है कि इस धरती पर मानव परंपरा रहना है उसके लिये कैसे करवट लिया जाये, उसके लिए ही यह प्रस्ताव है ।

भ्रमित होने के कारण इंद्रिय संवेदनओं के लिए मानव का जीना हुआ न कि संज्ञानीयता पूर्वक जीता हुआ । जिससे मानव को तृप्ति नहीं मिली । अतृप्त आदमी जो-जो करना है वह कर ही देता है । अतृप्ति को तृप्ति में लाने का कुल काम है इसको हम दूसरी भाषा में कहते हैं 'जागृति' । तृप्ति आयेगी समझदारी से। यही तृप्ति का नित्य स्रोत है । जीवन कभी मरता नहीं । जीवन में समझदारी आती है, तृप्ति आती है तो वह निरंतर ही रहेगी । ये सभी बातें हम देख चुके हैं। इस आधार पर यह प्रस्ताव है समझदारी सर्वमानव का अधिकार है । हर व्यक्ति इसका शोध कर सकता है । ऐसा मेरा सोचना है। मानव जाति अपने भावी क्षणों का निर्माता समाधान पूर्ण विधि से वैभवित हो सकता है ।

प्राणकोशाएं जब मिट्टी में मिल जाती हैं तो उर्वरक बन जाती है। आहार को आहार के लिए ये व्यवस्था प्रकृति सहज है । प्राकृतिक रूप में उर्वरक यही वस्तु है । प्राणकोशाएं बनती हैं और प्राणकोशाएं से रचित रचनाएँ पुनः विरचित होकर मिट्टी में मिल जाती हैं इन्हें उर्वरक कहते हैं । धरती में जितनी भी

उर्वरकता की आवश्यकता है वह सब स्थापित होने के बाद ही मानव को इस धरती पर अवतरण होने का अवसर मिला। मानव जब से पैदा हुए जंगल पर टूट पड़ा। जंगल पर टूटते-टूटते विज्ञान युग आ गया तो खनिज पर टूट पड़ा। खनिज और वनस्पति दोनों जब अपने अनुपात से अधिक शोषण होने के फलस्वरूप धरती में उर्वरकता का जो स्रोत था वह कम हो गया सबमें प्राण वायु भी। अब वैज्ञानिक जो खाद (रासायनिक) बनाकर सोचते हैं हम संसार का कल्याण करते हैं इस बारे में हमारा सोचना है कि प्राकृतिक रूप में जो व्यवस्था है उर्वरक बनने की उसी से इस धरती की उर्वरकता बच सकती है। धरती की सतह को जिस चीज की जरूरत नहीं है नदियाँ उसे समुद्र में ले जाकर दे देती है। तो अब कैसा संतुलन बना ? झाड़ वनस्पति ये सब धरती की सतह पर सघन रूप में रहने की स्थिति में ही ये सब चीज संतुलित रहेगी। अब हम क्या करते हैं एक समस्या को लिए एक और समस्या पैदा करते हैं। इस तरह समस्या से समस्या ढकता नहीं है। किसी एक छोटी समस्या को कितनी भी बड़ी समस्या से ढका जाए किन्तु समस्या ढकती नहीं है। ये सब कोई शिकायत या निन्दा करने की बात नहीं है। घटित घटनाओं के आंकलन के साथ पुनर्विचार करने का प्रस्ताव है और कोई कारण नहीं है यथास्थिति व आवश्यकता का वर्णन है। इस प्रस्ताव में कुल मिलाकर जीवन की दसों क्रियाओं को परम्परा में प्रमाणित करना है। दसों क्रियाओं के लिए समझदारी को चेतना विकास मूल्य शिक्षा पूर्वक प्रमाणित करना है। जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना है। जानना, मानना का तृप्ति बिन्दु जागृति व समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सहज प्रमाण ही है। यही अनुभव सहज प्रमाण है। इसलिए हर मानव अनुभव मूलक विधि से अपने को सार्थक बना सकते हैं। इसमें एक यह भी उपकार है कि इस प्रस्ताव में पुरोहितवाद का कोई स्थान नहीं है और न ही शक्ति केन्द्रित शासन का। मैं ही सबको तार दूँगा इस बात से भी मुक्त है। हर व्यक्ति अपनी समझदारी से भ्रम मुक्त हो सकता है। एक व्यक्ति तर जाएगा तो संसार तर जायेगा बात पर्याप्त नहीं हुआ, यह देख लिया गया है। इस प्रस्ताव में जो समझेगा वह तर जायेगा। अभी तक सारे

सद्ग्रन्थों में आश्वासन तो बहुत है किन्तु प्रमाण के रूप में धरती पर एक भी आदमी नहीं निकला । तो हम क्या करेंगे परंपरा में जो चीज आती नहीं है उसका कोई स्थान नहीं है । एक आदमी पहले बहुत कुछ पाया था या खोया था इसको हम कैसे सत्यापित करें, पर जो सुलझने का तरीका होगा वह परम्परा में आयेगा ही। इसको इस तरह भी देखा जा सकता है कि अभी तक आदमी बहुत सारा गलती व अपराध किया उसकी कोई परम्परा नहीं होती । परंपरा जब भी होती है समझदारी पूर्वक ही सफल होना सहज है । मानव मानवीयता पूर्वक जीने की कला ही परम्परा होती है । समझदारी की परम्परा अध्यवसायी विधि से हो सकती है । जीने की कला परिवार विधि से, समाज विधि से, व्यवस्था विधि से हो पाती है । इसी प्रकार मैं भी अपने जीने की कला को समझदारी के आधार पर ही पाया। समझदारी से जो जीने की कला आती है वह निश्चित रूप से समाधान व व्यवस्था रूप में जीना है।

न्याय प्रमाणित हुए बिना आदमी सामाजिक होता नहीं और न्यायविहीन आदमी समुदाय बनाकर कभी भी वाद-विवाद विहीन हो नहीं सकता। ऐसे समुदाय में द्रोह-विद्रोह, संघर्ष और युद्ध होता ही है। शोषण होता ही है और वाद-विवाद, द्रोह-विद्रोह, संघर्ष, शोषण होते हुए आदमी सामाजिक बन गया ऐसे कैसे मान लिया जाए । यदि समुदायों के संघर्ष को ठीक माना जाए तो बाद में हर व्यक्ति युद्ध करे, मरे-मारे ऐसा भी हो सकता है । इसके लिए छूट होना चाहिए, उसको क्यों बांध रखते हैं । तो इस मुद्दे पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है । इसको हम ठीक से हृदयंगम करते हैं तब देखते हैं कि हम अभी तक जो किए उसमें हम पार नहीं पा सके तो हम सोचने के लिए तैयार हो गये । यह मानव का स्वभाव सहज है कि मानव सोचता ही है । हर व्यक्ति सोच सकता है, शोध कर सकता है । अपने शोध से स्वयं तृप्त होना भी आवश्यक है दूसरों की तृप्ति का स्रोत बनना भी आवश्यकता है।

यहाँ से शुरू करने के लिए क्या किया जाये ? तो पहला मुद्दा समझदारी सहज शिक्षा-संस्कार विधि से सर्वसुलभ हो जाए । समझदारी के साथ जीने की

कला को अपनाया जाये । जीने की कला में धरती जल व वायु के साथ कैसे जिया जाये, वनस्पति के साथ कैसे जिया जाये, पशु संसार के साथ कैसे जिया जाये और मानव के साथ कैसे जिया जाये । इनमें से किसी एक को भी नहीं छोड़ा जा सकता, सबके साथ जीना ही है । हर व्यक्ति अनुभव कर सकता है, मूल्यांकन कर सकता है । यह दावा हर मानव करता ही है । हर मानव में दावा करने की यह प्रवृत्ति सहज है, थोपा हुआ किसी को स्वीकार नहीं है, हर व्यक्ति में यह मूल रूप में है, उत्साह है, स्वयंस्फूर्त है । हर मानव की ये आवश्यकता है। इतना सहज स्रोत रहते हुए भी हम कैसे अपेक्षा कर लिए कि हम दूसरों को तारूँगा । यह एक आश्चर्यजनक घटना है और इसमें हम सब भी आस्था करते रहे हैं । अब **यह सोचना है कि आश्वासन के ऊपर आस्था करना है या प्रमाणों के आधार पर विश्वास करना है ।** मुझे आरम्भिक काल से जैसे ही प्रवृत्ति हुई, प्रमाणों के आधार पर विश्वास करने के लिए हमारा विचार हुआ । हमारा स्वाभाविक रूप में उत्साह बढ़ा । प्रमाणों को खोजने के आधार में ही ये सब पुनर्विचार करने की प्रवृत्ति बनी उसके परिणाम स्वरूप जो कुछ हुआ उसे मानव सम्मुख रखने के लिए हम प्रवृत्त है । जैसे सात सौ करोड़ आदमी के सम्मुख रास्ता बंद हो चुका है, उसी भांति मेरे साथ भी रहा होगा। इसको आप अन्दाज कर सकते हैं ।

सभी मानवों जैसे ही स्थिति में मैं भी था । संसार में प्रचलित शिक्षा संस्कार, कर्मकांड संस्कार, इसी जंगल से मैं भी गुजरा हूँ । गुजरने के बावजूद हमारी स्वीकृति ना तो मेकाले शिक्षा के साथ रही ना परंपरागत आदर्शवादी संस्कार के साथ रही। हमारी आस्था इसमें स्थिर नहीं हो पायी । यह हमारा सम्पूर्ण उद्देश्यों की ओर दौड़ने का आधार और कारण बना। हमारी आस्था ना शिक्षा परंपरा में, ना संस्कार परंपरा में बनी इसलिए हम शायद रिक्त हो गये और यही हमारा अपने ढंग से दौड़ने का आधार बना । दो घटनाएं तो घट चुकी। इसमें एक घटना जीवन को समझना महत्वपूर्ण रही । जीवन में ही समझदारी समायी है एवं समझदारी पूर्ण विधि हमारे हाथ लगी । मान्यताओं, आस्थाओं के आधार पर हम

साढ़े चार क्रियाओं में जीते हैं। आस्था मतलब बिना जाने, मान लेना । जिसको जानने के बाद मानते हैं उसका नाम होता है विश्वास । विश्वास के साथ जीने में दस क्रियाएं प्रमाणित होती है । मैं दसों क्रियाओं को प्रमाणित करता ही हूँ आप भी कर सकते हैं । सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना ही है। इसी क्रम में ये अणु, परमाणु एक दूसरे को पहचानते हुए व्यवस्था के रूप में होते हैं। ग्रह, गोल, वनस्पति, पदार्थ ये सभी सह-अस्तित्व को प्रमाणित करते हुए व्यवस्था में है । सह-अस्तित्व प्रमाणित करने के क्रम में ही और शुद्ध रूप यही है कि सभी इकाईयाँ अपने में ऊर्जा सम्पन्न है। ऊर्जा सम्पन्न रहने की ही यह अस्तित्व अनुपम अभिव्यक्ति है । सभी परमाणु अंश, सभी परमाणु, सभी अणु अपने में व्यवस्था की ओर उन्मुख है । यही बात है जो मानव को प्रेरित करने के लिए मुख्य मुद्दा है । इस मुद्दे पर मेरा अनुमान ऐसा है कि हर ज्ञानी, विज्ञानी, अज्ञानी को सह-अस्तित्ववादी मानसिकता की आवश्यकता है । इसी मानसिकता के साथ हम मानव बन सकते हैं । मानव से कम में हमारा कोई ऐश्वर्य उदय होने वाला नहीं है। हमारे सम्मुख स्थित जंगल, पहाड़, खनिज जीव सह-अस्तित्व के आधार पर ही अपने वैभवों को प्रकाशित कर दिये हैं । सह-अस्तित्व विधि से ये समृद्ध है । **सह-अस्तित्व नहीं होता तो किसी को संरक्षण मिलना ही नहीं था । इसका मूल तत्व यही है सत्ता में एक-एक वस्तु (इकाईयाँ) संरक्षित नियंत्रित और ऊर्जा संपन्न है ।** जो अणु व प्राणकोशाओं के रूप में कार्यरत है उनकी सीमा उतनी ही है । इसमें भी सह-अस्तित्व वैभवित है । एक कोशा के साथ दूसरे कोशा का सह-अस्तित्व होने के कारण बहुकोशा विधि से निश्चित रचना रचित कर पाये हैं । ये रचना करने की विधि कोशा में स्थित प्राण सूत्र में निहित रहता है । इसका नाम है रचना विधि । इसमें निरंतर शोध होता रहता है । इसी गवाही के स्वरूप अनेक प्रकार की रचनायें हमारे सम्मुख है । इस गवाही के साथ हम आश्वस्त हो पाते हैं प्राणसूत्र में भी और परमाणु अंशों में भी शोध कार्यक्रम है ।

मानव के शोध कार्य का जो स्रोत है कल्पनाशीलता कर्म-स्वतंत्रता । उसके

बाद विचार शक्ति, इच्छा शक्ति, संकल्प अनुभव प्रमाण शक्ति ये सब शक्तियाँ अपने-आप में अनुसंधान करने के लिये, शोध करने के लिये तत्पर रहते हैं । इन तत्परता के साथ ही इन दस क्रियाओं के साथ जीने वाली क्रिया, जीने वाला वैभव प्रमाणित हो पाता है । इन दस क्रियाओं में मुख्य मुद्दा है अनुभव होना और अनुभवमूलक विधि से जी पाना । अनुभव मूलक पद्धति से जीने के लिये स्वाभाविक रूप से स्रोत बना हुआ है । जीवन अनुभव करना चाहता ही है । समझदार होना ही चाहता है अपने आप को समझदार, अनुभवशील, न्यायाविद्, चिंतनशील मानता ही है । अस्तित्व में संबंध चारों तरफ फैला रहता है उसको जानना-मानना-पहचानना और निर्वाह करना फलस्वरूप उभयतृप्त होना ही न्यायाविद् का प्रमाण है ।

मानव अपने में स्वतंत्र है समझदार बनना है या नहीं बनना है। यदि समझदार बनना है तो सह-अस्तित्व में समझदार बनने की परिस्थितियाँ समीचीन है । समझदार बनने की पूरी सामग्री है और समझदार नहीं बनना चाहता है उसके लिए भी सामग्री है किन्तु परिणाम दोनों का भिन्न है । नासमझी में शुभ, सुख घटित होने वाला नहीं । मेरे अनुभव अनुसार हम किसी से बंधकर, लदकर और लड़कर जीना नहीं चाहा वैसे ही आप भी किसी वस्तु से बंधकर, लदकर और लड़कर जीना नहीं चाहेंगे और कोई भी फंस कर जीना नहीं चाहता । इस तरह हर व्यक्ति कहीं ना कहीं समझदार होना ही चाहता है । न्याय समाधान में एकसूत्रता पूर्वक जीना चाहता है ।

संबंध जो है सभी ओर जुड़ा ही है इसे हम भ्रमवश पहचानते नहीं है यही परेशानी का घर है । जिस क्षण से हम संबंधों को जानना-पहचानना शुरू किया उसी मुहूर्त से हममें अपने आप से जीवन सहज मूल्यों का निष्पत्ति होती है । जैसे ही हमसे संबंधों को पहचानना होता है मूल्य अपने आप से बहने लगते हैं फलस्वरूप निर्वाह होता है उसका मूल्यांकन होने पर उभयतृप्ति होता है, इस तरह न्याय प्रमाणित होता है । संबंध को पहचानने कि स्थिति, पहचानने की विधि बनती है प्रयोजन के आधार पर । संतान 'मां' को पहचानते हैं पोषण के अर्थ में ।

संरक्षण स्रोत को 'पिता' कहते हैं । प्रमाण स्रोत को 'गुरू', जिज्ञासा स्रोत को 'शिष्य' कहते हैं । प्रचलित रूप में कहा जा रहा है कि हमें यंत्रवत् रहना है, यांत्रिकता में प्रवीण रहना है । क्या मानव एक यंत्र है ? इसका उत्तर देने वाला कोई माँई-बाप है ? मैं कहता हूँ मानव यंत्र नहीं है । सारे के सारे यंत्रों का रचयिता मानव है । जितने भी अभी तक यंत्र रचे गये हैं सभी यंत्रों का जनक मानव है । इसलिये यंत्र मानव को पा नहीं सकते । मानव से कम ही यंत्र बनता है इसलिये मानव का अध्ययन यंत्र कर नहीं सकता। दूसरा सभी यंत्र जड़ प्रकृति से बनता है । **अभी तक जितने भी यंत्र बनाये हैं पदार्थावस्था की वस्तु से ही बना है । प्राणावस्था की वस्तु से एक भी यंत्र नहीं बना पाये हैं । ये याद रखने की बात है । मानव तो बहुत दूर की बात है । अभी एक भी यंत्र प्राणकोशाओं से नहीं बना पाये हैं और डींग हांकते हैं कि मानव एक यंत्र है ।** मानव परंपरा के लिये कहाँ तक उचित होगा । अभ्युदय के अर्थ को कैसा पूरा करेगा । अभी तक कितने गहरे यह बात बैठी है कि मानव एक यंत्र है, भोग के लिये वस्तु है। अब तक ऐसा ही सोचा गया है जबकि ऐसा नहीं है। जब कोई अपने बच्चे के साथ जीता है मैं यंत्रधर्मी नहीं हूँ ऐसा लगता ही है।

मुझे मानव संचेतना सहित ही पहचान में आया । संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता का संयुक्त रूप ही संचेतना है। संवेदनाओं को नहीं पहचानता हूँ तब यंत्रवत् हो जाता हूँ यांत्रिकता में हमको अभी तक तो कोई तृप्ति मिली नहीं। हम यंत्रवत् कार्य करें और तृप्ति पा जायें ऐसा कोई रास्ता हमको मिला नहीं। ऐसा कोई गुरू हो तो हम उसको आमंत्रित करते हैं । वंशानुषंगीय विधि से समझाने वालों को मैंने सुना वे भी हमें समझाने में सफल नहीं हुए । इसी तरह भौतिकवादी तथा सापेक्षवादी सिद्धांत भी मानव को परिभाषित करने में असफल रहे हैं । यदि इन तीन सिद्धान्तों से मानव विश्लेषित हो पाता है तो उसे स्वीकार किया जाये । अन्यथा मानव को मानव के अर्थ में पहचाना जाये । मानव को मानव के अर्थ में पहचानने के लिए यह प्रस्ताव प्रस्तुत है ।

इसके पहले आदर्शवादी विधि की बात हुई जिसमें ईश्वर को तारने वाले

के रूप में प्रस्तुत किया गया है । ईश्वर को हमने देख लिया, उसके पास ऐसा कोई फैक्ट्री नहीं है जो तार सके । ईश्वर को किस रूप में देखा ? ईश्वर को व्यापक रूप में देखा । साम्य ऊर्जा के रूप में देख लिया जिससे हर इकाई ऊर्जित है । व्यापक में हर इकाई सह-अस्तित्व में है इसे देख लिया । ईश्वर में और क्या देखना बाकी है ? अगर कुछ बाकी है तो आप देख लेना और संसार को दिखा देना। आप अनुसंधान करने के लिए स्वतंत्र हैं । मैंने जो देखा-समझा वह आपके सामने प्रस्तुत है ही । हम न तो संवेदनशील विधि से पूरे हुए न ही यांत्रिक विधि से । संवेदनशील विधि से इन्द्रिय-सन्निकर्ष को हम केन्द्र में लाते हैं फलस्वरूप हमारे इन्द्रिय-सन्निकर्ष की हैसियत और अपेक्षा एवं हमारे भाई की हैसियत और अपेक्षा दोनों में दूरियां हैं। इस तरह से मानव को विविधता में बंटने की आवश्यकता बन ही जाती है जिसके अनुसार संवेदनशील विधि से मानव व्यक्तिवादी हो ही जाता है । दूसरी विधि, भोगवादी विधि से व्यक्ति, व्यक्तिवादी होता ही है उसे हम अनुभव करके बैठे ही हैं । तीसरी विधि, जो पूर्वजों ने बतायी थी भक्तिवादी-विरक्तिवादी । इनमें भी व्यक्तिवादिता का अंत नहीं होता है । इस प्रकार मानव अभी तक जितना भी घोर परिश्रम किया, अथक प्रयास किया, घोर आशा से भर-भर कर प्रयत्न किया सारे प्रयत्नों के विफल होने का आधार व्यक्तिवादी ही सिद्ध हुआ है । व्यक्तिवाद, सह-अस्तित्व का विरोधी है। यही सारे मानव के टूटने का आधार बना । व्यक्ति को जीना कहाँ है ? सह-अस्तित्व में । सह-अस्तित्व में जीने का सरल उपाय है मानव के साथ सह-अस्तित्व को जानना-मानना-पहचाना जाये । इसको पहचानते हैं तो व्यवस्था में जीना बनता है। समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना बनता है इसको आगे अध्ययन करेंगे । इसी तरह हम जीव-वनस्पति संसार के साथ भी सह-अस्तित्व में जीते हैं। वनस्पति संसार से हम कुछ लेते हैं वनस्पति संसार को देने के लिये भी कुछ हो। बिना कुछ दिये केवल लेना चाहते हैं तो इसका नाम है शेखचिल्ली । इस शेखचिल्ली विधि से प्रताड़ित, दुखी होने के अलावा कुछ बनता नहीं है। इसका अंतिम चरण यही है प्रताड़ना में अंत हो जाना, दुख में अंत हो जाना यही बनते जा रहा है।

वर्तमान में जो घटनाएं हो रही है इसी को घोषित कर रही हैं। सह-अस्तित्व में जीने के लिए वनस्पति संसार अर्थात जंगल, पेड़-पौधे और पदार्थ संसार के साथ हमारे सह-अस्तित्व को निश्चयन करना आवश्यक है । यदि इनके साथ हमारे सह-अस्तित्व को निश्चय करने में असमर्थ हैं तो हम ज्ञानी नहीं, हम विज्ञानी नहीं है, हम विवेकी नहीं है । अर्थात न हमारा ज्ञान पूर्ण है न हमारा विज्ञान पूर्ण न विवेक पूर्ण है । पेड़-पौधों को छोड़कर कहाँ जियेंगे । पृथ्वी, पहाड़, खनिज को छोड़कर, जीव संसार को छोड़कर कहाँ जियेंगे । इन सबके साथ हमको जीना ही है, ये सब हमारे साथ रहने वाले द्रव्य है, संपदा है, ऐश्वर्य है। हमको इनके साथ रहना है। इनको भी रहना है। इस निश्चयन में मानव ही प्रमुख मुद्दा है । मानव ही इसमें भ्रमित होकर प्रताड़ित होकर, दुखी होकर जिया है । अब करवट लेने की जरूरत है । जागृत होने की जरूरत है। सबके साथ सह-अस्तित्व को पहचानने की जरूरत है । सह-अस्तित्व को पहचानने की विधि में हम पाये हैं कि ये सबके सब सत्ता में ही है यह सह-अस्तित्व की पहली गवाही है । क्रम से पदार्थावस्था से ही प्राणावस्था उद्‌गमित, प्रभावित और निरंतर वैभवित है । प्राणावस्था अपने आप में व्यवस्था के रूप में प्रभावित है, प्रमाणित है, वैभवित है । जीव संसार भी अपने त्व सहित व्यवस्था में गवाहित है । मानव अपने त्व को कैसे समझा जाये, स्व को कैसे समझा जाये। स्व भी रहे त्व भी रहे यह मुख्य मुद्दा है ।

जीवन विद्या से स्व, त्व समझ में आता है । जीवन को मैं 'स्व' के रूप में पहचानता हूँ आप भी पहचान सकते हैं । शरीर को 'स्वरूप' में पहचानते तक भ्रमित रहते हैं । जीवन को 'स्व' रूप में पहचाना, उसी क्षण से मैं व्यवस्था में जीता हूँ । आप भी वैसे ही जी सकेंगे । इससे पहले व्यवस्था होने वाला नहीं है। कितनी प्रकृति सहज, सह-अस्तित्व सहज परिपूर्ण प्रक्रिया है । समझने वाली वस्तु भी जीवन है जो समझेगा वह भी जीवन है। आदर्शवादियों के अनुसार दृश्य, दर्शन, दृष्टा तीनों एक होने पर ही मुक्ति होती है । उनके अनुसार ईश्वर ही दृश्य है, ईश्वर ही देखने वाला है, ईश्वर ही दर्शन है । इन्हीं आधारों पर बहुत सारा

वांङमय रचा गया है । इसके बाद भी ईश्वर कैसा है ? कहाँ है ? क्यों है ? ये समझ में नहीं आया । इसके बाद भी ईश्वर के आधारित बात मानव सुनता है, अच्छा लगता है । यह बात देखा गया है अच्छा लगने में, अच्छा होने में दूरी यथावत बना हुआ है। इसके बाद मानव को यंत्र बताने लगे वो भी हो नहीं पाया लेकिन बताते ही रहे । जैसे ईश्वर को बता नहीं पाये फिर भी बताते ही रहे। इस ढंग से हम फंस गये हैं इससे हटकर कुछ सोच नहीं पाते । इससे छुटकारा पाने की विधि है कि जीवन तो नित्य है । शरीर तो जीवन के लिए बारम्बार घटना है । शरीर की रचना गर्भाशय में होती है । अस्तित्व सहज विधि से परमाणु विकसित होकर जीवन पद में आता है। शरीर बारम्बार रचित व विरचित होता है । प्राणावस्था की एक सीमा है उसके बाद वह विरचित हो जाता है । शरीर भी प्राणकोशों से रचित इकाई है । शरीर रचना में जितना संपन्न मेधस हो सकता था वह मानव शरीर रचना में निहित है । इस आधार पर मैं इस बात को सत्यापित कर रहा हूँ कि मानव संपूर्ण अस्तित्व को दूसरे को संप्रेषित कर सकता है । इससे ज्यादा मेधस का कोई प्रयोजन भी नहीं है । इस आधार पर मानव की शरीर रचना (प्राणसूत्र रचना विधि के आधार पर अनुसंधान होते बनी) श्रेष्ठतम हो गई है और भी कोई चीज बची होगी वह भी आगे पूरी हो जायेगी । इस बीच शरीर यात्रा में हमको क्या करना है ? जीवन जागृति को प्रमाणित करना है। इस क्रम में हम जैसे ही शुरू किये, संवेदना के छुपने का काम हुआ नहीं । न विज्ञान विधि से न आदर्शवादी विधि से। संवेदनाओं के विरोध में बहुत सारे तप बताये गये हैं । बहुत से तपस्वी हुए इस धरती पर किन्तु इन तपस्या के परिणाम में एक निश्चित समझदारी जिसके लिये मानव तरस रहा है वह व्यवहार में, परंपरा में आया नहीं । अब तपस्वी क्या खोये क्या पाये ये तो वही सत्यापित करेंगे। सामान्य लोग ऐसे तपस्वी से सिद्धि चमत्कार की अपेक्षा किये हैं । उसके पीछे लट्टू होकर घूमे हैं । मैं बता दूं कि अस्तित्व में न सिद्धि है न चमत्कार है, अस्तित्व में निश्चित व्यवस्था है, निश्चित परिणाम है, निश्चित उपलब्धि है, निश्चित मंजिल है, इसकी निरंतरता है, इसको मैंने देखा है, समझा है। ऐसे निश्चित मंजिल के लिये हम

आप प्रत्याशी हैं । निश्चित विधि से ही वह निश्चित मंजिल मिलने वाला है। मानव का अध्ययन छोड़कर, काकरोच को सर्वाधिक विकसित प्राणी बताकर, रासायनिक खाद बनाकर, कीटनाशक बनाकर हम मानव की मंजिल नहीं पायेंगे । मानव की मानसिकता को धन के रूप में, शोषण के रूप में प्रयोग करके भी मानव अपनी मंजिल को नहीं पायेगा । इसका नाम दिया है 'इन्टेलेक्चुअल प्रापर्टी राइट' । विश्व की सर्वोपरि संस्थायें और न्यायालय भी इसे स्वीकारना चाह रहे हैं । जीवन की अक्षय शक्तियाँ है उसको कहाँ शामिल किया जाये । उसको भोगद्रव्य के रूप में कैसे उपयोग किया जाये इसका उत्तर कोई देगा ? क्या जीवन को समझकर ऐसा प्रस्ताव रखा है ? यह कहाँ तक मानव जाति के लिए उपकारी है ? मेरा अनुभव यह कहता है मानव की जीवन शक्ति को कितना भी उपयोग करें वह घटने वाली नहीं है । इसे आप अनुभव करें करोड़ों आदमी अनुभव करके देख सकते हैं । जीवन शक्तियों का जितना भी उपयोग करें, शक्तियाँ और ताजा व प्रखर होती है । जितना आज उपयोग किया कल उससे ज्यादा प्रखर हो जाती है। इस विधि से जीवन शक्तियों का कितना भी उपयोग करें वे खत्म होती नहीं है । उनको तादाद में बांध नहीं सकते । बांधने जाओगे तो बांधने वाला ही विकृत होगा । इस प्रकार बुद्धिवाद से भी हम कैसे गिरवी करते हैं, दास बनते हैं, शोषण का आधार बनाते हैं इसका नमूना है यह । मैं समझता हूँ यह मानव विरोधी है, सह-अस्तित्व विरोधी है बुद्धि को शोषण का आधार बनाकर, द्रोह-विद्रोह का आधार बनाकर, बपौती बनाकर, हमारा बुद्धि के लिए आपको टैक्स देना है ऐसा बताकर हम समाज बनाने की घोषणा करते हैं । यह क्या सच्चा हो सकता है ? यह सोचने का मुद्दा है । मेरे अनुसार यह सर्वथा मिथ्या है बुद्धि को कोई सीमित किया नहीं जा सकता और सब मानवों की बुद्धि अक्षय है इसलिये उसे सीमा में पुस्तकों में बांधा नहीं जा सकता। हम जितने वांङमय लिखा हूँ उससे भी बहुत बड़ा मैं स्वयं को अनुभव किया हूँ । जितने भी यंत्र बने हैं उससे मैं बड़ा हूँ । मानव जाति बड़ा है ही । मानव ने ही सब किताबों को लिखा है और सब किताबों से बड़ा हर मानव है । यहाँ पर आये बिना हम अपनी सद्बुद्धि को प्रयोग

करेंगे यह हमको दिखता नहीं । इन सब चर्चाओं से शायद सोचने पर सब अपने में औचित्यता को स्वीकार कर सकते हैं। स्वीकारने के क्रम में यही अंतिम बात आती है कि हमको समझदार बनना ही है । समझदार बनने में कोई तकलीफ नहीं है । नासमझी के प्रयोग में ही तकलीफ है । देखिए, यह धरती अपने में एक है । इसको हम खण्ड-प्रखण्ड में बांटकर हम राष्ट्र के रूप में देखते हैं । इतना ही नहीं उन हर एक खण्डों के चारों ओर सेना खड़ी कर देते हैं जब चाहे तब हाथापाई करते हैं, झड़प करते हैं । धरती तो टुकड़ा-टुकड़ा हो नहीं सकता, होने के पश्चात कोई बच भी नहीं सकता । उसको टुकड़ा ही मानकर (जबकि वह टुकड़ा नहीं है) क्या हम सच्चाई करते हैं । यह एक सोचने का मुद्‌दा है । हमारा झूठ कैसे घर किया है इसका उदाहरण है यह । दूसरा मिसाल मानव को अलग-अलग करने के लिए रंग और नस्ल के आधार पर हमने सोचा, जैसा जानवरों में होता है। यह कैसी बुद्धिमत्ता है । मानव का मूल्यांकन समझदारी के आधार पर होता है ना कि नस्ल और रंग के आधार पर । इसको हम पहले भी अच्छी-अच्छी घटनाओं के रूप में देख चुके हैं । जैसे - दास युग का विरोध, राजयुग का विरोध । राज युग से प्रजा तंत्र के लिये मानव संक्रमित हुआ है किन्तु समाजवादी या मानववादी व्यवस्था के आधार पर व्यवस्था करने के लिये अभी तक हम निष्णात हो नहीं पाये हैं । हम मानते हैं कि निष्णात हो गये है । झूठ यहां है हम मानते हैं हम पा गये । क्या पा गये ? सुविधा पाये हैं । युद्ध, द्रोह, शोषण तो है ही, तो झूठ का स्रोत कहाँ-कहाँ है ? राष्ट्र की सोच (धरती विखण्डित है ऐसा सोचना) संविधान, शक्ति केन्द्रित शासन । राष्ट्र सर्वोपरि, संविधान सर्वोपरि यह माना गया । संविधान का मर्म क्या निकला शक्ति केन्द्रित शासन । शक्ति केन्द्रित शासन क्या है ? **गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना, युद्ध को युद्ध से रोकना ।** सामान्य सुविधाओं का उपक्रम भी कुछ संविधानों में किया है। जिसमें यह सोचा गया है सब के पास पैसा हो तो वह जी लेगा, लड़ लेगा ।

संघर्षपूर्वक ही जीना है, संघर्ष से ही अस्मिता बना रहता है यही सब

घोषणा करते हैं। इन घोषणाओं में क्या सच्चाई कर रहे हैं? सारे झूठ की जड़ इन्हीं घोषणाओं में है। इसी पर आधारित परिवार, व्यापार, शिक्षा आदि झूठ के पुलिंदे के नीचे दबे हैं। कुछ इससे छूटने की कोशिश करते हैं कुछ दबे रहते हैं। हमारी इच्छा है शिक्षा में परिवर्तन करने की।

अभी हम जीवन सहज दस क्रियाओं को प्रमाणित करने को तत्पर हुए हैं। जीवन होने की स्वीकृति हर मानव में है ही। हर व्यक्ति अपने मन से कहता ही है कि जीवित हूँ, जीवन्त हूँ। किन्तु जीवन क्या है? जीवन का प्रयोजन क्या है? जीवन का अध्ययन करता कौन है? जीवन की दस क्रियाओं को मैंने समझा है, जीकर देखा है, ये मुझमें प्रमाणित हुई हैं। जीवन की दस क्रियाओं का नाम पहले समझ लें।

1. आत्मा - जीवन का यह एक भाग है जो सह-अस्तित्व में अनुभव करता है। जिसे मध्यांश के रूप में मैंने देखा है। गठनपूर्ण परमाणु के मध्यांश के रूप में यह अपने आप में क्रियाशील रहता है। उसके प्रथम परिवेश, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ परिवेश के रूप में बाकी सभी क्रियायें सम्पादित होती है। जीवन परमाणु के मध्य में (आत्मा) दो ही क्रिया है :- अनुभव और प्रमाणिकता सहज रूप में व्यक्त होता है, जिसका प्रमाण मैं हूँ।
2. बुद्धि - प्रथम परिवेश में अनुभव प्रमाण बोध और ऋतम्भरा (संकल्प) दो क्रियायें होते देखा हैं। अनुभव प्रमाण को प्रमाणित करने का संकल्प क्रिया प्रकट होता है, जिसका नाम ऋतम्भरा है।
3. चित्त - द्वितीय परिवेश में चिंतन और चित्रण दो क्रियायें होती हैं।
4. वृत्ति - तृतीय परिवेश में तुलन और विश्लेषण दो क्रियायें होती हैं।
5. मन - चतुर्थ परिवेश में चयन और आस्वादन दो क्रियायें होती हैं। यही जीवन सम्पूर्णता में दस क्रियाएं हैं।

अभी तक मानव साढ़े चार क्रियाओं में प्रमाणित हुआ है। तुलन में प्रिय,

हित, लाभ है । प्रिय, हित, लाभ के आधार पर संवेदनशीलता पर आधारित कार्य करना बन गया। संवेदनशीलता इंद्रिय मूलक, शरीर मूलक होता है । जबकि इंद्रियों को जीवंत बनाने का काम जीवन ही करता है। शरीर को जीवन मान लेना ही मूल भ्रम है। शरीर को जीवन मान लेने पर शरीर के अनुसार चलना होता है यही मान्यता का आधार है, जानना कुछ होता नहीं । होना क्या चाहिये जीवन को जीवन माना जाये और शरीर को शरीर । जीवन का और शरीर का प्रयोजनों के आधार पर मूल्यांकन होना सहज है । यदि ऐसा होता है मानव चेतना पूर्वक जीना बनता है । व्यवस्था में जीना बनता है । इनका मूल्यांकन नहीं हुआ तो अव्यवस्था होगा ही । व्यवस्था में जीने के लिए आवश्यक है कि जीवन का मूल्यांकन प्रयोजन के आधार पर तथा शरीर का मूल्यांकन उपयोगिता के आधार पर हो । शरीर की उपयोगिता, जीवन अपनी जागृति को मानव परंपरा में प्रमाणित करने के लिए है । मानव शरीर रचना को मानव ने नहीं बनाया है। मानव शरीर बनने के बाद जब शिशु मिलता है तब वह जीवंत ही रहता है । जीवंत शिशु मिलने के बाद हम यह मान लेते हैं यह शरीर ही जीवन है । थोड़े दिन बाद वह शिशु भी यही मान लेता है । इस ढंग से परम्परा अपने आप में फंसने की बात बनी हुई है और इस फंसाव से निकलने के लिए अभिभावक को समझदार होना ही होगा ।

शिशु का शरीर गर्भ में बनता है और उसे कोई न कोई 'जीवन' चलाता है। 'जीवन' प्रकृति में है ही । शरीर को 'जीवन' चौथे-पांचवें महीने में चलाना शुरू कर देता है । इस प्रकार शरीर और जीवन का संयोजन गर्भाशय में ही हो जाता है । 'जीवन' शरीर नहीं है । यह पहचानने की बात इस प्रकार है । शरीर के किसी भी अंग अवयव में न्याय की, धर्म की, सत्य की प्रतीक्षा अपेक्षा नहीं है। किन्तु हम हर मानव से न्याय की, व्यवस्था की, सत्य की, अपेक्षा, प्रतीक्षा करते ही हैं। इन अपेक्षाओं का पूरा होना ही जीवन की दस क्रियाओं को प्रमाणित करना है । शरीर को जीवंत रहने के लिए शरीर में जीवन होना जरूरी है ।

'जीवन' अपने से, सदा से, शिशु काल से मन की दो क्रियाओं चयन, आस्वादन को शुरू करता है । विश्लेषण और तुलन में विश्लेषण तो करता ही है

तुलन में केवल प्रिय, हित, लाभ के आधार पर ही करता है । चित्त की एक क्रिया चित्रण को हम करते ही हैं । चित्रण क्रिया के कारण मानव अपना सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा की समस्त वस्तुओं को चित्रित कर लिया है और उसको प्राप्त कर लिया है । प्राप्त करने के बाद भी हम व्यवस्था तक नहीं पहुँचे । आदर्शवाद, शुभकल्पना अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया । भौतिक और उन्मादत्रय पूर्वक सुविधा-संग्रह प्रवृत्तियों का शिक्षण-प्रशिक्षण कार्य क्रम के लोकव्यापीकरण में सफल होते हुए भी सबको सुविधा-संग्रह सुलभ नहीं हुआ । इन्हीं उपलब्धियों को हम सोचते रहे श्रेष्ठता की उपलब्धि है, मानवीयता की उपलब्धि है । मानव के अधिकारों की उपलब्धि है, शोषण, संघर्ष की उपलब्धि है । इन बातों को सुनकर हँसी भी आती है । अफसोस भी होता है । हम कैसे मान लिए कि हम मानव के लिए सब कुछ पा लिए, मानव का अध्ययन कर लिए । यह सोचने का पुनर्विचार करने का मुद्दा है । **शरीर शास्त्र के नाम से जो कहा जाता है उसमें केवल शरीर रचना व प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है और कहते हैं कि मानव का अध्ययन कराया जाता है।** आप सोचिए शरीर को काटकर, मांसपेशियों को, हड्डियों को गिनकर मानव का अध्ययन किया जा सकता है ? जीवंत मानव शरीर में आँख, कान आदि का अध्ययन करने पर मानव का अध्ययन कैसे होगा। इस तरह परंपरा में मानव को झूठ का पुलिंदा लादा जाता है जबकि हम मानव का अध्ययन किये नहीं और डींग हांकते हैं कि हम मानव का अध्ययन कर लिये हैं । अस्तित्व का अध्ययन किये नहीं और कहते हैं कि हम इस पर शासन करेंगे । इस ढंग से मानव परंपरा बोझ तले दब गई है । अब दो ही विकल्प है या तो इससे निकला जाये या दबकर मरा जाये । नियति ही अपने को संतुलित करती है यह भी हमें पढ़ाया जाता है । मानव जाति जितना अति कर सकता है करने के बाद प्रकृति ऐसी परिस्थिति पैदा करेगी कि मानव इस धरती पर रहेगा ही नहीं । पर्यावरण की बात पर हम हल्ला-गुल्ला सुनते ही है कितना आदमी बचेगा कितना मरेगा इसके लिये उपाय सोचा जा रहा है । कुछ देश वाले सोचते हैं हमारा देश बच जाये, कुछ धर्म वाले सोचते हैं कि हमारे धर्म वाले बच

जायें। बचाने वाला वही है जिसे रहस्यमय ईश्वर, परमात्मा, देवी-देवता, अवतार, देवदूत आदि से काल्पनिक आश्वासन उनको मिलता है ऐसा किसी एक का नाम लेते हैं । उसमें कुछ मजहब की बात रहती है । बाकी का अंत होने वाला है। यह सब कहकर कहाँ जाना चाहते हैं ? क्या होगा ऐसा सोचने से ? इस मुद्दे पर हमारा सोचना यह है कि धर्म और राज्य, शिक्षा के नाम पर सभी भटक चुके हैं। अच्छी तरह से। धर्म गद्दी में धर्म की कोई सार्वभौमता नहीं है। धर्मगद्दी के नाम पर जितने भी धर्म हैं उनमें कोई सार्वभौम धर्म का आकार नहीं है। कोई शिक्षा नहीं, कोई प्रमाण नहीं। कहाँ से धर्म को लायें ? राज्य गद्दी में राज्य की कोई अवधारणा सार्वभौम तो नहीं है।

हमें राज्य को बचाने के लिये काम करना है । क्या करेंगे ? संघर्ष करेंगे। संघर्ष का कुल मसाला है विद्रोह-द्रोह, शोषण और युद्ध । ये चार मसाला कौन बनाता है। प्रकृति या मानव। इसको देखा गया, अध्ययन किया गया तो पता लगा कि यह मसाला मानव ही बनाता है, भ्रमवश बनाता है । दिग्गज संस्था दो ही है - धर्मगद्दी, राज्यगद्दी। सबसे शक्तिमान सारा ताकतवार, सारा साधन जिनके पास है ये दोनों गद्दी है। ये दोनों गद्दी इस तरह से रिक्त हो गई है। व्यापार गद्दी का पूछना ही नहीं है। वह पहले से ही शोषण के लिये तैयार बैठी है। शिक्षा गद्दी से पूछा गया उनके पास कोई मार्गदर्शन की, दिशा दर्शन की चिन्हित लक्ष्य को पहचानने की कोई व्यवस्था नहीं है । अब बोलिये, सामान्य आदमी क्या करे ? ये जो चार परंपरायें है (धर्म, राज्य, व्यापार, शिक्षा) इनसे कोई रास्ता मिलने वाला नहीं । रास्ता खोजा जाये, बनाया जाये यही साहसिकता है । वह रास्ता समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी रूप में सहज होगा । मारपीट के रास्ते से कोई लक्ष्य मिलता नहीं । मारपीट से आवश्यकतायें पूरी होती नहीं है । इसके बाद भी इसकी परंपरा बनाकर रखे हैं। यह भी बहुत बड़ा भ्रम हो गया कि नहीं । अब बुद्धि की बात यही है कि हम समझदार हों। समझदारी की जाँच स्वयं स्वीकृत रूप में विकसित चेतना सहज अध्ययन से है । मुझको जाँचकर आप समझदार हो नहीं सकते । आप स्वयं अपने को जाँचेगें तब आप समझदार

होंगे। मैं संसार को जाँच-जाँच कर तीस वर्ष सिर कूट लिया। हमको कहीं भी समझदारी का कोई अंश नहीं मिला । जब हम पचीस वर्ष प्रयत्न कर अपने को जाँचा तब हमें समझदारी का ठौर मिला। विगत प्रयास से हमने जो भी पाया उसे अध्यवसायी विधि से मानव को सौंपना चाहा । इसी क्रम में यह एक प्रयास है।

अब तक आपको इंगित हो गया होगा कि सह-अस्तित्व ही परम सत्य है। सह-अस्तित्व में जीना ही हमारा परम धर्म है यह समझ में आता है तो उसके लिए सारी समझदारी समीचीन है। यह बहुत सुलभ है । मेरे हिसाब से झूठ ज्यादा कठिन है सच्चाई में जीना ज्यादा आसान है । ज्यादा सुगम है मैं जीकर देखा हूँ । पहले जब प्रश्नों से घिरा था जीने में कितना दिक्कत होता था । जब समाधान मिल गया तब प्रश्नों से मुक्त हो गया और जीना सुगम हो गया । यह बात आपको भी ठीक लगती है तो हमारा विश्वास बढ़ेगा ही । इस बात को साथियों ने देख लिया है आप भी चाहते तो आप भी जाँचिए । जाँचना तुलन से शुरू होता है न्याय सम्मत व्यवहार से शुरू होता है । क्या हम संबंधों को समझे हैं या संबंधों का हम निर्वाह करते हैं, संबंधों में निहित मूल्यों का मूल्यांकन कर पाते हैं, उभय तृप्ति की जगह आ पाते हैं या नहीं आ पाते हैं ये जाँचने का मुद्दा है । यदि ये जाँचना शुरू करते हैं तो प्रिय, हित, लाभ में निश्चयता मिलती नहीं । हमको जो प्रिय लगा, आपको ठीक नहीं लगेगा। हमको जो हितकारी लगा आपको नहीं लगेगा जितने लाभ से आप संतुष्ट हुए उतने से हम नहीं होंगे। इसी में सभी मानव फँसे हैं। इस तरह प्रिय में, हित में, लाभ में समानता का आधार नहीं हो सकता । इससे छूटने के लिए क्या किया जाए इस तीन तुलन (प्रिय, हित, लाभ) के बदले दूसरा तुलन (न्याय, धर्म, सत्य) रखा हुआ है। न्याय दृष्टि से जब हम तुलन करने लगते हैं उसे कहते हैं, चिंतन । न्याय हमको संबंधों को व्यवस्था के अर्थ में पहचानने के बाद ही समझ में आता है । संबंध पहचानने में आ गया फलस्वरूप मूल्य निर्वाह होने लगा, उसका फलवती स्वरूप है मूल्यांकन हुआ और उभयतृप्ति होने लगी इसका नाम है न्याय । न्याय वही है जो दोनों पक्षों को संतुलित रूप से संतुष्ट कर सके । यदि दोनों पक्ष संतुष्ट नहीं हैं तो न्याय नहीं

है। इस संबंध में हमसे कोई पूछा कोई अपराध या गलती करता है उसका क्या किया जाये ? अपराध/गलती कोई इसलिए करता है क्योंकि उसको हम समझदार बनाते नहीं है । आप अपराधी को लेकर क्यों चलते हो, सही आदमी को लेकर क्यों नहीं चलते हो । बहुत से आदमी ऐसे हैं जो कोई अपराध नहीं करते हैं उनके साथ हमारा कोई समस्या नहीं है। परस्पर हम मूल्यांकन करते हैं और उभयतृप्ति पाते ही हैं । इसको कैसे भुलाया जाये । एक तो यह प्रमाण आपके सामने है आपको इसकी जरूरत है कि नहीं । मैं समझता हूँ सभी लोग इसी की बाट देखते बैठे हैं । मुझमें आपमें इतना ही अंतर है मैं दर्दवश एक कदम आगे बढ़ गया । मुझको यह चीज हासिल हो गई इसको मैं सत्यापित कर पाता हूँ । समझने के बाद आप भी यही सत्यापित करेंगे । इसमें इतना सुख है, इतना तृप्ति है। इस प्रकार सर्वमानव सत्यापित करने के योग्य हो जायेंगे समझदारी के बाद । समझदारी कहाँ मिलेगा ? शिक्षण संस्थाओं में अध्यवसायी विधि से । शिक्षण संस्था क्या है ? सभी अभिभावकों की सम्मिलित अभिव्यक्ति है ।

समझदारी, बोध पूर्वक प्रमाणित करने के लिए जो कार्य है उसका नाम है शिक्षा। समझदारी, प्रमाण बोध हुये बिना शिक्षण कार्य होता नहीं । समझदारी के लिए, शिक्षण संस्थायें जिम्मेदार हैं, हर अभिभावक जिम्मेदार है। हर परिवार शिक्षा के लिये सूत्र है। इसलिये शिक्षण संस्था के लिए एकीकरण, निजीकरण, सरकारीकरण ये सब सोचने से कुछ होगा नहीं और ना कुछ हुआ है। सीधे-सीधे **अभिभावक शिक्षण संस्था के रूप में देखा जाना चाहिये।** इसी में मानव का कल्याण होगा। समझदारी से यही रूप निकलता है । हमें न्यायप्रदायी क्षमता से निष्णात होना होगा। न्यायप्रदायी क्षमता स्वयं में प्रमाणित होना होगा । ये दोनों चीजों से सम्पन्न होते हैं तभी हम न्याय कर पायेंगे । दोनों चीजों से सम्पन्न होते हैं तभी हम समझते हैं। जब समझेंगे नहीं तब न्याय कैसे करेंगे । बड़े-बड़े न्यायालयों में न्याय को समझा हुआ न्यायमूर्ति नहीं मिलते हैं तो और लोग क्या करेंगे ? जीने में कम से कम न्याय तो होना ही चाहिये । इसका प्रमाण है मानवीयतापूर्ण आचरण । मानवीयतापूर्ण आचरण से कम में न्याय तो होता ही नहीं है। इससे

ज्यादा जरूरत नहीं है । चिंतन के साथ जीवन की छह (6) क्रियायें पूरी हो जाती है । विश्लेषण प्रिय, हित, लाभ के अर्थ में बहुत कुछ कर चुके हैं । शरीर की आवश्यकताओं के लिये सामान्य आकांक्षा और महात्वाकांक्षा संबंधी वस्तुओं का उत्पादन बहुत कर चुके हैं । इसके अलावा जो वस्तु है जैसे बम बनाना, मिसाइल बनाना, युद्धपोत आदि बनाना ये चीजें मानवोपयोगी नहीं है । ये निरर्थक हैं और बरबादी के कारण हैं । तर्क विधि से और घटना विधि से यह सिद्ध हो जाता है । तात्विक विधि से, तर्क विधि से, व्यवहार विधि से मानव के लिए वस्तुओं का उपयोग सिद्ध होता है । तात्विक विधि से हम सुखी होना चाहते हैं । हम सुखी होते हैं तात्विक विधि रूप में हम व्यवहारिक हो गये । उसको प्रमाणित करने के लिये हम व्यवहारिक होते हैं यही तर्क विधि है । इस ढंग से तर्क, तात्विक और व्यवहारिक विधि से आदमी प्रमाणित होने की बात आती है । हम जितना भी बात करते हैं, पढ़ते हैं, लिखते हैं, तर्क विधि के आधार पर करते हैं । सार्थक तर्क तात्विकता को छूता है यही संप्रेषणा की महिमा है ।

यदि हमारी संप्रेषणा में अगले व्यक्ति को तात्विकता छू गयी तो हमारी संप्रेषणा सार्थक है । यदि वही तत्व व्यवहार की सार्थकता को इंगित कराता है (व्यवहार में सार्थकता है, मानव का प्रयोजन समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व इन चारों को इंगित करा देना) और बोध कराता है तो व्यवहार ज्ञान अनुभव होता है । इसमें तात्विक ज्ञान हो गया । तात्विक ज्ञान के लिए भी तर्क चाहिए, व्यवहार ज्ञान के लिए भी तर्क चाहिए। पहली उपलब्धि यही है अपना मूल्यांकन, परिवारजनों का मूल्यांकन किस आधार पर होगा । मूल्यों के आधार पर, संबंधों के आधार पर, उभयतृप्ति के आधार पर। व्यवहार में हम न्यायिक हो गये यही प्रमाणित कर सकते हैं। तब आदमी मानव हो गया। पहले मानव हुआ फिर समझदारी के आधार पर स्वायत्त हो गया और छः गुण आ गये:-

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा में संतुलन

4. व्यक्तित्व में संतुलन

5. व्यवहार में सामाजिक

6. व्यवसाय में स्वावलंबी ।

ये छह अर्हताएं जब मेरे समझ में आयी तब मैं स्वयं को स्वायत्त अनुभव किया हूँ । वैसे ही हम परिवार में अपनी समझदारी, समृद्धि को प्रमाणित करने में समर्थ रहे। इसी सत्यतावश आपके सम्मुख प्रस्तुत हुए। हर व्यक्ति सज्जन बनना चाहता ही होगा, सज्जनता के लिए न्यूनतम अर्हता न्याय है । न्याय को जैसा मैं देखता हूँ वह संबंध, मूल्य, मूल्यांकन और उभयतृप्ति ही है । इसके बाद हमारे समझ में बात आयी है कि हर व्यक्ति जन्म से ही न्याय का याचक है । सही कार्य-व्यवहार करना चाहता ही है । सत्य वक्ता होता ही है, इस आधार पर शिक्षा में क्या होना चाहिए ? हर मानव संतान को सत्य बोध होना चाहिए, सही कार्य-व्यवहार करने के लिए अभ्यास होना चाहिए, विधि होनी चाहिए, न्याय प्रदायी क्षमता स्थापित होनी चाहिए । तीनों चीजें ही शिक्षा-संस्था में हो सकती हैं और तब मानव परंपरा अपने आप बन जाती है। इससे पहले मानव परंपरा बनेगी नहीं । मानव परंपरा की शुरूआत न्याय से ही करना पड़ेगा । न्याय के लिए मुख्य मुद्दा है नैसर्गिक संबंध जो शाश्वत है एवं मानव संबंध निरंतर है । जब मानव कोई गलती कर लेता है तब मार्गदर्शन के लिए कहाँ जाता है ? हमने देखा है परिवार में कोई व्यक्ति जो न्याय को सत्यापित किया तो वो मार्गदर्शन देगा । परिवार में न हो तो गांव में कोई होगा जो मार्गदर्शन देगा । गांव में भी न हो तो देश धरती में कोशिश करेगा यह सहज प्रवृत्ति है । यह स्वाभाविक है कि हर मानव में कहीं न कहीं सुधार की प्रवृत्ति है । संसार में परिवर्तन चाह रहे हैं ऐसा तो गवाही हो चुकी है । क्या परिवर्तन चाहिए यह पकड़ में नहीं आता रहा, उसके लिए यह प्रस्ताव है । शिक्षा-संस्कार से ही लोक व्यापीकरण होगा । शिक्षा में भी मानवीय शिक्षा को प्रावधानित किया जाना चाहिए । हर व्यक्ति को न्यायपूर्वक जीकर प्रमाणित होने के लिए हमको समझदारी को देना ही पड़ेगा । इसके लिए शिक्षा में विज्ञान के साथ चैतन्य का भी अध्ययन कराना होगा । चैतन्य को हम

समझेंगे नहीं, तो अस्तित्व हमको समझ में आ नहीं सकता और अस्तित्व नहीं समझेंगे तो व्यवस्था कैसे समझ में आयेगी ? अस्तित्व को समझने वाला जीवन (चैतन्य) ही है । इसलिए चैतन्य वस्तु का भी अध्ययन शिक्षा में समावेश होना जरूरी है।

मनोविज्ञान में संस्कार पक्ष (समझदारी) का समावेश होना चाहिए, मानव संचेतना का समावेश, पहचान होना चाहिए । मानव संचेतना में संवेदनशीलता, संज्ञानशीलता दोनों वैभवित है । दर्शनशास्त्र को प्रमाणिकता के साथ पढ़ाना चाहिए । जब प्रमाणिकता के साथ पढ़ायेंगे तो मानवता विधि ही आयेगी, भौतिक और आध्यात्मिक विधि नहीं । अतः मानव समझदार हो सकता है, समझदारी के लिये अस्तित्व सहज समीचीन है । प्रमाणों के बारे में जो अनुभव किया है वह यह है कि मैं जो समझा हूँ, सीखा हूँ, किया हूँ, जीता हूँ उसको समझाने, सिखाने और कराने में प्रमाणित होता हूँ। इन तीनों विधा में हमें प्रमाणित होना जरूरी रहा है । चौथा और कोई प्रकार नहीं है । समझने में परिपूर्ण होना जरूरी है । सीखने, करने में थोड़ा कमी चल सकती है । अभी तक हम सीखने, करने-कराने का काम बहुत अच्छे से कर लिये हैं किन्तु समझने के क्रम में शून्य हैं । सीखने-सिखाने, करने-कराने को ही हम सर्वोपरि मूल्य बताते हैं। इससे न कोई समाधान मिला न मानव को कोई राहत ही मिला, कहीं न कहीं हम फंसते ही रहे ।

अतः अब मानव को अपने में विश्वास और सम्पूर्ण अस्तित्व सहज अध्ययन करने की आवश्यकता आ गयी । मानव अपने अध्ययन, अभ्यास के बाद ही समझदारी में प्रमाणित होना बनता ही है । आदर्शवादी विधि और भौतिकवादी विधि में मानव का अध्ययन कहीं न कहीं पीछे छूट गया । आदर्शवादी विधि में देवी-देवता, ईश्वर को सर्वोपरि माना और मानव पीछे रह गया । देवी-देवता, ईश्वर को समझने के चक्कर में मानव के अध्ययन को तिलांजली दे दिया । भौतिकवादी विधि में भी मानव को छोड़ दिया, प्रयोग विधि से यंत्र को पकड़ लिया अर्थात् यंत्र प्रमाण हो गया । आदर्शवाद में ग्रंथ, किताब, वांङ्मय प्रमाण हो गया और भौतिकवाद में यंत्र प्रमाण हो गया । इस तरह से आदमी का अवमूल्यन

हो गया और भ्रम के चपेट में फंसकर भ्रम का ही पूरक हो गया । इस तरह मानव भ्रम में फंसकर कुंठित हुआ, पीड़ित हुआ, प्रताड़ित हुआ । अब मानव का उद्धार कैसे हो ? उद्धार का आश्वासन पहले भी सभी गद्‌दी देते रहे हैं किन्तु उद्धार का प्रमाण न हो पाया ऐसा कितने दिन चलेगा।

विकल्प रूप में यहाँ मानव के उद्धार का मूल स्रोत है समझदारी । सबसे बड़ी गद्‌दी है शिक्षण संस्था । उसमें विज्ञान के साथ चैतन्य का अध्ययन होना चाहिये । चैतन्य के अध्ययन के बिना सह-अस्तित्व का अध्ययन कैसे होगा ? ये दोनों भाग शिक्षा संस्थानों में, शिक्षा वांङ्मय में, शिक्षा प्रक्रिया में अछूता है । दूसरा, मनोविज्ञान में मानव के अध्ययन के लिये मानव संचेतना समझ में आता है, प्रमाणित हो जाता है, आवश्यकता भी समझ में आती है । इसलिये, संस्कार पक्ष का अध्ययन मनोविज्ञान में होना चाहिये । तीसरा, दर्शन शास्त्र के साथ प्रमाणिकता होनी चाहिए । अभी तक हम मानते रहे हैं कि मानव पढ़ा और पढ़कर सुनाया तो विद्वान हो गया। जबकि ये विद्वान हुआ नहीं रहता । विद्वान, समझदारी का स्वरूप है और विद्या अपने आप में अस्तित्व सहज है । सह-अस्तित्व को समझे बिना, जीवन को समझे बिना, मानवीयतापूर्ण आचरण के बिना विद्वान होता नहीं । ये समझ में आता है विचार शैली भी बनता है, योजना भी बनता है, कार्ययोजना भी बनता है फलस्वरूप प्रमाणित भी होता है । अगर हम समझे नहीं तो विचार शैली कहाँ से पायेंगे । बिना समझे जो विचार शैली बनी है उसमें से एक है सुविधा संग्रह के लिए और दूसरी विचार शैली है आदर्शवाद, त्याग, अपरिग्रह, विरक्ति, भक्ति । इसमें भी करोड़ों लोग अपने को लगाए और अपनी धैर्य, साहस, निष्ठा का परिचय दिये । इन दोनों से अखण्ड समाज का कोई रूपरेखा देखने को नहीं मिला । मानव हमेशा अथक परिश्रम करते आया है किन्तु मानव लक्ष्य व दिशा विहीन था। मैंने जो प्रयास किया वह केवल हमारे प्रश्नों के उत्तर के लिए था। हमें स्वर्ग मिलेगा, पैसा मिलेगा, संग्रह मिलेगा ऐसा कोई लक्ष्य मेरा नहीं था । एक ही बात थी हमारे पास शंका है तो उसका उत्तर मिलेगा ही। मैं योग और संयोग शब्दों का अर्थ बता दूँ। योग का अर्थ है - मिलन । जैसे हम

कहीं जा रहे हैं रास्ते में कोई पत्थर, आदमी मिल गया तो योग कहेंगे । संयोग का अर्थ है सम्पूर्णता के अर्थ में मिलन । पूर्ण का अर्थ है मानव का व्यवस्था में जीना । परमपूर्ण का अर्थ है मानव का प्रमाणिक हो जाना। व्यवस्था में जीना, प्रमाणिक हो जाना मानव की चाहत है । किन्तु वह नहीं मिलने पर जो मजबूरी है उस पर चलकर परंपरा के अनुसार ढल जाता है। योग-संयोग सदा-सदा रहता ही है। पूर्णता के लिए कई प्रयास हुए हैं (सफलता एक अलग बात है) । मानव ने पूर्णता के लिए बहुत कुर्बानी दी है। कुर्बानियों का परिणाम तो होता ही है । जब किसी चीज को तोड़ते है तब सफलता तो आखिरी हथौड़े में दिखती है किन्तु उसके पहले लगे सभी हथौड़े नहीं पड़ते तो उस हथौड़े से सफलता नहीं मिलती । सभी चोटों का फल सफलता में समायी है । सफलता मुझे मिली इसमें पहले जो प्रयास हुए उनका भी योगदान है इस प्रकार संपूर्ण मानव के योगदान के फलस्वरूप यह घटना-घटित हुई ऐसा मैं स्वीकारा हूँ ।

इससे बड़ा लाभ हुआ कि अर्हता मुझे नहीं हुआ । मेरे पास अहंता के साथ प्रस्तुत होने वाले लोग भी बहुत कम आये हैं । कितनी भी अहंता को लेकर आने वाले लोगों को दो-तीन सीढ़ी के बाद अहंता का शमन होता हुआ देखा गया । मेरे साथ तो सारे मिलन सज्जनता के साथ सादगी के साथ स्वाभाविक रूप से हुआ। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि मेरे से मिलने वाले हर सज्जन ने हमारी बात को स्वीकार कर लिया । बहुत से लोग नहीं स्वीकारते हैं इनका भी हम सम्मान करते हैं । इनकी गलती नहीं है उनके ऊपर परंपरा को लाद दिया गया है। इसलिए कोई स्वीकारे या नहीं मैं खुशी में रहता हूँ । कालक्रम संयोग हरेक के लिए सद्बुद्धि का अंकुर रखा ही है । वह कब पल्लवित होगा, पुष्पित होगा ये हम नहीं कह सकते । हर आदमी शुभ चाहता ही है। शुभ चाहने के मूल में संभावनाओं को और समीचीन किया जाए यह मैं चाहता हूँ । संयोग जब होते हैं आदमी समाधान के अर्थ में, व्यवस्था के अर्थ में, अखण्ड समाज के अर्थ में मिलते हैं । एक ही विचार एक ही अपेक्षा के लोगों के मिलने से संयोग नहीं बनता । जैसे दो चोर, दो डाकू, दो अपराधी मिलना समाधान, व्यवस्था के अर्थ में

नहीं है इसलिए यह संयोग नहीं है ।

न्यायपूर्वक हमसे जीना बना तो हमारी प्रमाणिकता की स्थली बनी, हमारा परिवार । परिवार जनों की आँखों में हम ठीक चल रहे हैं यह आ जाता है । परिवार में न्यायपूर्वक चलने के बाद जितने हमारे मित्र परिवार है उनके बीच सटीकता से हमारी पहचान देख पाता हूँ । उसके बाद न्यायपूर्वक जीना हमारे अधिकार में हो गया जो आगंतुक आते हैं, उन पर भी हमारी पहचान स्पष्ट करने में समर्थ हो पाता हूँ ।

हर मानव अपनी सार्थकता और सफलता को अपनी चाहत में बनाये ही रखता है । हमारी समझदारी है, हमारी नेक चाहत का स्रोत। इस स्रोत को हम कभी भी भुलावा नहीं दे सकते । शुभ हर व्यक्ति को स्वीकार है हर व्यक्ति की चाहत है और शुभ घटित होने के लिए इंतजार हम सब कर ही रहे हैं । इंतजार करते समय संबंध का मुद्दा आता है । संबंधों की पहचान उसमें निहित प्रयोजन (मूल्य) की पहचान ही है । यही अध्ययन है । प्रयोजन पहचानने के बाद मानव स्वाभाविक रूप में निष्ठान्वित होता है और फिर पारंगत होता है। पारंगत होने के बाद फलित होता ही है । यही विधि है सफलता की जो काफी सरल है । अभ्युदय सभी संबंधों के साथ जुड़ा ही रहता है। संबंधों का प्रयोजन अभ्युदय है अर्थात् सर्वतोमुखी समाधान और सुख के अर्थ में है। समाधान के अर्थ में ही हम प्रेम करते हैं, समाधान के अर्थ में ही हम कृतज्ञ होते हैं, मैत्री करते हैं, विश्वास करते हैं, मानव व्यवहार में प्रशस्त रहते हैं और सुख का अनुभव करते हैं । मूल्यों का स्वरूप बनता है ममता, वात्सल्य, विश्वास, स्नेह, कृतज्ञता, गौरवता, प्रेम, श्रद्धा, सम्मान । हमारे अभ्युदय के लिये जहाँ से भी सहायता मिली हो, जिससे भी मिली हो, इसकी स्वीकृति का नाम है ''कृतज्ञता'' । कृतज्ञता के साथ अन्य मूल्य अपने आप सार्थक होने लगता है । कृतज्ञता के पश्चात स्नेह, प्रेम, विश्वास सार्थक होता है। ऐसा कोई आदमी नहीं मिलता जिससे कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में सहायता न मिली हो । सबकी सहायता के साथ आदमी बड़ा होता है, समर्थ बनता है और प्रमाणित हो जाता है । इस क्रम में जितने भी संबंध है

(सात संबंध) उनमें मूल्य ही मूल्यांकित होने पर संबंधों की निरंतरता होती है । संबंधों में मूल्य मूल्यांकित न होने पर संबंधों की निरंतरता होती नहीं है । सामान्य क्रम में भी जिनको हम अपना संबंधी मानते हैं उनके साथ अच्छे ढंग से प्रस्तुत होते ही हैं । परंपरागत ढंग से हम संबंधों को बल, धन, बुद्धि, आयु के आधार पर पहचानते हैं । जबकि संबंध पहले अभ्युदय के अर्थ में है, दूसरे पोषण के अर्थ में है, तीसरे संरक्षण के अर्थ में है, चौथे उपयोगिता पूरकता के अर्थ में, पाँचवें सदुपयोगिता के अर्थ में, छठवें प्रयोजन के अर्थ में । संबंधों के लिए सर्वोपरि वरीयता प्रमाणिकता के अर्थ में है । प्रमाण के आधार पर हर कोई संतुष्ट होता है। मूल्य जीवन सहज रूप में उद्‌गमित होते हैं। जैसे : हम और आप जब मिलते हैं तो स्वाभाविक रूप से मूल्य बहने से हमारे आपके बीच विश्वास मूल्य शुरू हो जाता है । इस विधि से हम संबंधों में मूल्यों को पहचानने, मूल्यांकन करने और उभयतृप्ति पाने में सक्षम हो जाते हैं । इससे बड़ा लाभ क्या हो गया ? अभी तक भय और प्रलोभन के आधार पर संबंधों को पहचानते रहे; उसके स्थान पर मूल्य और मूल्यांकन समाधान समृद्धि की स्थिति में आ जाते हैं । भय और प्रलोभन कोई मूल्य ही नहीं है तो मूल्यांकित क्या होगा ? भय के साथ प्रलोभन, प्रलोभन के साथ भय, थोड़ी देर के लिये चुप होने वाली बात है । रोग तो वहीं का वहीं रहता है । न्यायालयों में भी न्याय की बात पूरी हुई नहीं क्योंकि भय और प्रलोभन न्याय का आधार हो ही नहीं सकता । शताब्दियों से भय और प्रलोभन के आधार पर ही एक-दूसरे को राजी करते रहे हैं । पर अभी तक कोई व्यवस्था दे ही नहीं पाये । हम इस बात पर सहमत हो पाते हैं कि भय और प्रलोभन कोई मूल्य नहीं है और न ही संबंधों में मूल्यांकित हो पाते हैं ।

मानव अभी तक मूल्यों के पास गया ही नहीं । मूल्यों के पास गया होता तो मूल्य अभिव्यक्त होता, मूल्य प्रमाणित होता, मूल्यांकित होता और स्वाभाविक रूप में न्याय होता । न्यायालयों में फैसला होता है न्याय नहीं। इन फैसलों से एक पक्ष भयवश एक पक्ष प्रलोभनवश सहमत होता है । उभयतृप्ति इसमें कभी हुआ नहीं, हो ही नहीं सकता है । न्याय को पाने में हम सर्वथा असमर्थ रहे हैं। उसके

बावजूद भी विकास का दावा करते हैं। विकास का क्या अर्थ होता है आप ही सोच लीजिए। भय और प्रलोभन से हर मानव छूटना चाहता है ये नियति सहज है। इससे मानव का भी कल्याण है। नैसर्गिकता का भी कल्याण है । इस तरह प्रयोजन के आधार पर संबंध है । प्रयोजन समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व है इसके लिये प्रक्रिया है व्यवस्था में जीना । व्यवस्था में जीने का मतलब है कि पाँचों आयामों में भागीदारी करना । पाँच आयाम है : 1. शिक्षा-संस्कार, 2. न्याय- सुरक्षा, 3. स्वास्थ्य-संयम, 4. उत्पादन-कार्य, 5. विनिमय-कोष।

इस विधि से हम परिवार में, व्यवस्था में जीने से पाँचों आयामों में भागीदारी करने से समग्र व्यवस्था में भागीदार होते हैं । इस तरह से मानव के लिये निरंतर उमंग, खुशिहाली, अटूट साहस बन जाता है। न्याय के बाद आता है, धर्म । धर्म का मतलब अनुभव प्रमाण बोध जो बुद्धि में होता है अर्थात् समाधान। समाधान का मतलब ही मानव धर्म है, व्यवस्था में जीना ही मानव धर्म है, यही अभ्युदय है। अव्यवस्था में मानव जीता है तो समस्या से ग्रसित हो जाता है व्यवस्था में जब जीता है समाधानित रहता है । आदमी समस्याग्रस्त रहना चाहता नहीं है । अतः आदमी समाधानित रहना चाहता है । समाधान = सुख, मानव सुखधर्मी है । समस्या = दुख, समस्या को आदमी चाहता नहीं । भय और प्रलोभन के आधार पर समाधान होता नहीं और सारा संसार तुला हुआ है कि भय और प्रलोभन के आधार पर समाधान हो जाए। भय और प्रलोभन के आधार पर व्यवस्था को समीकरण करने के लिए हम आज भी शिक्षण प्रशिक्षण करते हैं जबकि इससे व्यवस्था हो नहीं सकती । कहीं एक जगह पर भय और प्रलोभन के आधार पर कुछ बनता है तो उसी क्षण से उसके टूटने का कार्यक्रम शुरू हो जाता है। अतः मूल्य और मूल्यांकन के आधार पर ही व्यवस्था होगी । परिवार व्यवस्था, प्रौद्योगिकी, प्रशासन, राज्य, व्यवस्था सभी स्तर पर व्यवस्था इसी विधि से होगी । व्यवस्था का मतलब यही है मानव अपनी प्रमाणिकता को प्रस्तुत कर सके, न्याय का निर्वाह कर सके और व्यवस्था में भागीदारी कर सके ।

परिवार में, हर आदमी में, हर बच्चे में समझदारी का सूत्र देना ही शिक्षा-

संस्कार व्यवस्था है । इसे समझदारी का लोकव्यापीकरण करना भी कह सकते हैं। पहले आपको बताया दर्शन; दर्शन के बाद विचार; विचार के बाद शास्त्र; शास्त्र के बाद योजना । योजना में एक है जीवन विद्या योजना जिसमें मानव परिवार मानव चेतना सम्पन्न होने के लिए पूरी गुंजाईश है । इस समझ से आदमी परिवार में व्यवस्था के रूप में जी सकता है । दूसरी योजना है मानवीय शिक्षा-संस्कार का मानवीकरण। इसमें बच्चों के लिए शिक्षा व्यवस्था है । ऐसी शिक्षा को हम एक स्कूल में (बिजनौर, उ.प्र.) प्रयोग किये। यह पाँच वर्ष का अनुभव है । जीवन विद्या के आधार पर शिक्षा का मानवीकरण करने गये उसका क्या प्रभाव पड़ा वहाँ देखा गया । लोग कहते रहे हैं कि विद्यार्थियों के ऊपर वातावरण का प्रभाव पड़ता है जिसे हम नकारते रहे । यदि वातावरण का प्रभाव पड़ता तो हम अनुसंधान कैसे कर पाते ? इस स्कूल से यह प्रमाण मिलने लगा है कि बच्चों का प्रभाव परिवार पर एवं उनके परिवार वालों का प्रभाव वातावरण पर पड़ने लगा है । बच्चे जीवन के रूप में अपने को पहचानने लगे और व्यवस्था में जीना अति आवश्यक है इसे स्वीकारने लगे । इसके फलस्वरूप बहुत से बच्चे टी.वी., व्यर्थ वार्तालाप आदि में अरूचि दिखाये जाने वाले चीजों का मूल्यांकन करने लगे और यह सब निस्सार है ऐसा समझने लगे । साथ ही गाँव में एक परिवार में दूसरे परिवार के साथ बैर-भाव था, मारपीट, मुकदमा होता था । वह भी धीरे-धीरे शमन होने लगा। अब उन गाँवों में मेरी जानकारी के अनुसार झगड़ा-झंझट कम हो गया है । इसी को हम कहते हैं बच्चों का आचरण रूपी वातावरण का प्रभाव पड़ा और इसी के अनुसार हम कहते हैं कि इस शिक्षा में दम-खम है ।

शिक्षा के मानवीकरण में हम विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का अध्ययन करायेंगे। चैतन्य पक्ष का अध्ययन का मतलब है जीवन । जीवन का, जीवन जागृति का अध्ययन करायेंगे । रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना का अध्ययन करायेंगे । मानव के लिए रचना-विरचना में पूरकता तथा मानव इस संसार के लिए कैसे पूरक, कैसे उपयोगी होगा, यह सब अध्ययन करायेंगे। इसके साथ ही विकल्पात्मक दर्शन शास्त्र में क्रिया पक्ष का अध्ययन करायेंगे। क्रिया पक्ष का

अर्थ है मानव की समझदारी के लिए दर्शन है । समझदारी का प्रमाण होना चाहिए। समझदारी के साथ हम अपने पहचान को बनाते हैं । तब सह-अस्तित्व ही पहचान में आता है मूल्यों का निर्वाह करना ही बनता है और मूल्यांकन में उभयतृप्ति ही स्वाभाविक रूप में बनता है । व्यवस्था सह--अस्तित्व में एक शाश्वत सत्य है । शाश्वत सत्य किस अर्थ में है ? - अस्तित्व में हर एक अपने त्व सहित व्यवस्था है : जैसे बेल का झाड़ उसमें बेलत्व समाया रहता है । पीपल का झाड़ अपना आचरण बनाए रहता है । पीपल के पेड़ में पीपल के फल और पीपल के बीज होंगे, उसी के गुण, धर्म होंगे यही उसका आचरण है । इसी तरह पूरा वनस्पति संसार, जीव संसार का आचरण निश्चित है और ये अपने-अपने आचरण में प्रकाशित हैं । इसे ही कहते हैं त्व सहित व्यवस्था । मानव का आचरण अभी तक निश्चित नहीं हो पाया, क्योंकि मानव अभी तक व्यवस्था में जी नहीं पाया । अभी तक हम व्यवस्था नहीं पाये हैं किन्तु व्यवस्था की जरूरत है यहाँ पर आ गये हैं । व्यवस्था पाने के लिए हमको अपने त्व सहित व्यवस्था में जीना पड़ेगा । स्वत्व क्या है ? स्व स्थिति रूप में और त्व गति रूप में स्पष्ट है 'स्वत्व' मानवीयता पूर्ण आचरण । मानवीयता में मूल्य, चरित्र, और नैतिकता है । मूल्य का प्रमाण है संबंध, मूल्य मूल्यांकन उभयतृप्ति। जो परिवार में होना ही है । उभयतृप्ति से कम में कोई परिवार है नहीं उससे ज्यादा की जरूरत नहीं है यही मानवत्व है । यह घटित होने के लिए स्वयं स्फूर्त विधि से आदमी मूल्यों में जियेगा । व्यवस्था में जीने से चरित्र की बात आयेगी । चरित्र को स्वधन, स्वनारी/ स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में पहचाना गया है । नैतिकता (तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा) से अभयता बनती है। इस प्रकार से मानवीयता पूर्ण आचरण है । इसमें बहुत अच्छे ढंग से मानव आश्वस्तता पूर्वक जी सकता है ।

इसके बाद आती है मानव की परिभाषा : ''मनाकार को साकार करने वाले को मानव कहते हैं।'' अर्थात मानव के मन में जो भी आता है (यथा यंत्र बनाना, घर बनाना आदि) उसको साकार करने वाला तथा मनः स्वस्थता का

आशावादी है अर्थात् सुख की आशा में ही हर मानव जीता रहता है । मानव सुखधर्मी है । इस तरह से मूल्य, नैतिकता, चरित्र का स्वरूप समझ में आता है । परिभाषा के अनुसार जहाँ तक मनाकार को साकार करने वाली बात है उसको मानव पा गया है । मनाकार को साकार करने वाली बात दो विधा में होता है । एक सामान्य आकांक्षा (आवास, आहार, अलंकार) और दूसरा महत्वाकांक्षा (दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन)। जहाँ तक आचरण की बात है वह कहीं नहीं मिलता है । न तो शिक्षा में, न संविधान में मिलता है । संविधान में मानवीयता पूर्ण आचरण को मूल्यांकित करने की कोई व्यवस्था नहीं है। शक्ति केन्द्रित किसी भी संविधान में मानवीयता पूर्ण आचरण को प्रमाणित करने का प्रावधान होता ही नहीं है क्योंकि यह मानवीय संविधान होता ही नहीं है । इसलिए इसमें मानवीय आचरण हो ही नहीं सकता। मानवीयतापूर्ण आचरण को कोई प्रमाणित कर नहीं पाये। ऐसा मूल्यांकित करने का साहस जुटा नहीं पाये, ऐसे समझदारी को जोड़ नहीं पाये । इन कमियों को पूरा किये बिना मानव सुख से जी नहीं पायेगा और लड़ाई झगड़ा करता ही रहेगा । इस कचड़े से छूटने के लिए समझदारी ही एक उपाय है । इसके लिए शिक्षा का मानवीकरण करना अति आवश्यक है । शिक्षा में विज्ञान के साथ चैतन्य प्रकृति का, दर्शन के साथ क्रिया पक्ष का, मनोविज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का, भूगोल और इतिहास में मानव तथा मानवीयता का समावेश करेंगे । इस ढंग से शिक्षा में मानवीयता के समावेश होने से मानव की प्रवृत्ति सहज रूप से व्यवस्था में जीने की, अपने को प्रमाणित करने की होगी। अपने पहचान के साथ समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व में जीने के अवसर आवश्यकता सफलता के स्थान पर हम पहुँच जायेंगे। इसलिए शिक्षा-संस्कार मानवीयता के साथ ही पूर्ण होता है, दूसरी विधि से नहीं होता । अभी हम जिन संस्कारों की बात करते हैं वे हमारी प्रचलित मान्यताओं पर आधारित हैं उनमें सार्वभौमता नहीं है ।

तीसरा बिन्दु हैं 'सत्य' । सत्य क्या है ? अस्तित्व, सह-अस्तित्व के रूप में समझ आना ही सत्य है । सत्य समझ में आने के बाद व्यवस्था समझ में आती

है। अस्तित्व को सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में ही अध्ययन किया जाता है । मानवेत्तर प्रकृति और मानव एक दूसरे के पूरक है । इस विधि से जीने की कला को विकसित कर लेने पर मानवीय व्यवस्था ही होती है । यह समझ लेने के बाद हम न्याय में ही जियेंगे, व्यवस्था में ही जियेंगे, परिवार में, व्यवहार में प्रमाणिकता को ही प्रमाणित करेंगे और अन्यथा शक्ति केंद्रित शासन कुछ भी नहीं करेंगे ।

इस ढंग से आश्वस्त, विश्वस्त, समृद्धि सहज स्थिति में पहुँचते हैं । अभी हमें विज्ञान यह कहकर पढ़ाया जाता है कि जो भी है अव्यवस्था है, अनिश्चित है । इसे पढ़ने के फलस्वरूप हर विद्यार्थी अपने को अव्यवस्था में होना स्वीकार लेते हैं। फलस्वरूप अव्यवस्था को फैलाने में भागीदारी करता है इसका उदाहरण ये पूरी धरती बीमार है । इस धरती में ताप बढ़ रहा है । कारण क्या है ? धरती के अन्दर से खनिज, कोयला, तेल निकालने से ताप बढ़ रहा है । कैसे बढ़ गयी, क्यों बढ़ गयी ये वो भी जानते हैं हम भी जानते हैं । कोयला और तेल ही ऐसे पदार्थ हैं जो ताप को अपने में हजम करते हैं । धरती में ताप को हजम करने वाले पदार्थ को निकाल लिया तो धरती का ताप बढ़ना ही है । ताप बढ़ने से क्या हुआ समुद्र का जल-स्तर बढ़ने लगा । पानी का सतह कितना बढ़ सकता है ? तो हम जहाँ बैठे हैं वहाँ से दो तीन सौ फीट ऊँचा पानी हो सकता है । कुछ पर्वतों की चोटियाँ बचती है । इस ढंग से हम फँस गये । इसको ठीक करने के लिए सब बड़े-बड़े देश मिलकर आव्हान करते है कि आओ सब मिलकर ठीक करें और शुरूआत किसने किया यह इतिहास स्पष्ट करता है । बिना समझे ईंधन के लिए कोयला और तेल पदार्थ उपयोग किया यह धरती के साथ हुई ज्यादती है और इसकी भरपाई आगे होगी कि नहीं इस ज्यादती के रुकने के बाद ही इसका परीक्षण होगा । यह कैसे रुकेगा इसके बारे में आगे बात करेंगे। धरती पर मानव अधिक व कम तापमान में भी जीना प्रमाणित है । यह अंतर नापना भी संभव हो गया है । इतने तापमान अंतर में रहने वाले आदमियों के शरीर का तापमान एक ही रहता है । ऐसा क्यों ? बाहर के ताप अधिक और कम होने से भी शरीर के ताप को संतुलित बनाये रखने के लिए शरीर में वह सब द्रव्य है । इसी प्रकार

धरती के ताप को भी संतुलित बनाये रखने के लिए धरती के अंदर खनिज, कोयला और तेल पदार्थ है ।

तो अब मुद्दा यह है कि खनिज, कोयला और तेल को निकाले जाने से रोका कैसे जाये ? एक उपाय है हमारी धरती पर इतनी नदियाँ बहती हैं जिनके प्रवाह शक्ति से धरती पर जितनी बिजली की आवश्यकता है उससे 50 गुनी बिजली उपलब्ध हो सकती है । इसके लिए प्रवाह बल से बिजली पैदा करने वाले संयंत्र को बनाने की आवश्यकता है । दूसरे कुछ यंत्र ऐसे हैं जो तेल से ही चलेंगे ऐसे यंत्रों के लिए वनस्पति तेल से चलने वाले इंजिन बनाने होंगे । इसके लिए धरती पर तैलीय वनस्पति होती है और अधिकाधिक मात्रा में उसे उगाया जा सकता है । ऐसा मैं सोचता हूँ । सौर ईंधन की ओर लोगों का ध्यान है ही और अधिकाधिक आतुरता से ध्यान देने की आवश्यकता है । सौर ईंधन को और भी व्यवहारिक यंत्रों, संयंत्रों में उपयोग लाने की जरूरत है । इस तरह से धरती पर जितनी ऊर्जा की आवश्यकता है उससे ज्यादा ऊर्जा धरती की सतह पर उपलब्ध होने की बात समझ में आती है। इस तरह से कोयला और पेट्रोलियम का उपयोग बंद किया जाये, उसके स्थान पर वनस्पति तेल, प्रवाह शक्ति, तरंग, वायु और सूर्य ताप का उपयोग किया जा सकता है उसके पश्चात यह परीक्षण किया जा सकेगा कि अभी तक जो गढ्ढे किये गये हैं उसे धरती स्वयं पाटने में कितनी सक्षम है ।

तीसरे एक और तलवार मानव पर लटक रही है । इस धरती पर जब भी पानी बनने की घटना हुई होगी, ऐसी घटना के मूल में यदि शोध किया जाए तो ब्रम्हाण्डीय किरणों के संयोग से यह घटना घटित हुई है ब्रम्हाण्डीय किरणें ही इस घटना का एक मात्र स्रोत है अब उसकी निरंतरता बन चुकी है । अभी धरती के वातावरण का क्षय हुआ है । इससे ऐसी संभावना बन सकती है कि वही ब्रम्हाण्डीय किरणें यदि विपरीत विधि से प्रभाव डालें तो धरती पर से पानी समाप्त हो सकता है। जिस-जिस स्रोत से धरती का आवरण क्षतिग्रस्त हुआ है विज्ञानी उसे पता लगा लिए हैं । केवल स्रोत पता लगाने से तो क्षति ठीक होगी नहीं,

बनाने की आवश्यकता है । बनाने की विधा में यही बात आती है धरती के साथ जो-जो अत्याचार किया है उसे रोकना पड़ेगा । खनिज तेल, कोयला और विषाक्त गैसों और तरल पदार्थों को जो मानव ने युद्ध की सामग्री के लिए बनाया है उसी से धरती का सुरक्षा कवच क्षतिग्रस्त हुआ ऐसा पेपर में पढ़ने आता है । यदि यह सच्चाई है तो इन सब प्रक्रियाओं को रोकना होगा जिससे धरती का वातावरण क्षतिग्रस्त होता है। मानव क्षतिग्रस्त करने के बाद क्षतिपूर्ति का उपाय भी सोचता है, करता है यह बहुत बड़ा गुण है जबकि अन्य जीवों में ऐसा नहीं होता । किन्तु धरती की क्षतिपूर्ति के लिए मानव ने अभी तक कोई कार्य नहीं किया । बल्कि हर दिन और बिगड़ाव देखने को मिलता है। कब तक करेंगे ? क्या कभी इस बिगड़ाव को ठीक करने के बारे में कुछ करेंगे ?

धरती, मानव को सुरक्षित विधि से जीने का विधान बनाती रही है, किन्तु मानव ने अपनी बुद्धि से सारी धरती के साथ विद्रोह किया, धरती पर आक्रमण तथा शोषण किया । आदिकाल से ही मानव धरती के वातावरण को बिगाड़ने में लगा है । विज्ञान युग के बाद ज्यादा बिगड़ाव हुआ, इसलिए हम संकटग्रस्त हो गये हैं । कोई आदमी नदी में डूबता है तो उभरता भी है ये संभावना रखी हुई है। तो धरती को बचाने की संभावना को हम आचरण करना चाहते हैं कि नहीं, यह हमारे विचारों के ऊपर है । विचारों से परिस्थितियाँ बन जाती हैं अगर चाहते हैं तो परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं, नहीं चाहते हैं तो प्रतिकूल हो जाती है । अपनी बुद्धि भ्रमित होने के कारण वास्तविकता का, प्रकृति के वातावरण की महिमा का मूल्यांकन करने में चूक गये । फलस्वरूप हम विविध प्रकार से क्षतिग्रस्त हुए और प्रकृति को क्षतिग्रस्त किये । क्षतिग्रस्त करते तक हम खुशहाली मनाएं लेकिन स्वयं क्षतिग्रस्त होने की संभावना से डरते भी हैं । यह हुआ विगत का विश्लेषण । मानव संचेतना से यदि मानव व्यवस्था में जीने को तत्पर होता है तभी जीवन विद्या एक दूसरे के पास पहुँचता है इसका प्रमाण मिल चुका है। इसको हम एक स्कूल में तैयार कर पायें हैं । इसके शुभ परिणामों को देखते हुए इसके लोकव्यापीकरण की आवश्यकता है।

नासमझी के बिना कोई मानव कुकृत्य करता नहीं है । मेरे अनुसार हर व्यक्ति शुभ चाहता है और शुभ के लिए जिम्मेदार है । फलस्वरूप कभी न कभी सर्वशुभ के प्रति जिम्मेदारी महसूस करेगा । यह सर्वशुभ को महसूस करने के अर्थ में ही जीवन जागृति की बात आती है । सुविधा संग्रह से मुक्ति और भक्ति-विरक्ति के स्थान पर स्वस्थ समाज की रचना के लिए ही समझदारी की बात, जीवन जागृति की बात छेड़ने का मन आया । बुद्धि में होने वाली बोध और संकल्प क्रिया का प्रमाणीकरण तभी हो पाता है जब बुद्धि में न्यायबोध, सत्य बोध, धर्म बोध हो जाए । जब ये तीनों बोध हो जाते हैं तो बुद्धि को सद्बुद्धि कहते हैं । फलस्वरूप सर्वशुभ की जिम्मेदारी को मानव स्वीकार करता है। अस्तित्व को समझने पर सह-अस्तित्व के रूप में नित्य वर्तमान होना हमको बोध होता है। जिसका हम अध्ययन कराते हैं।

इसकी एक झलक गणितीय विधि से विखंडन विधि को पता लगाया । विखंडन विधि को ज्यादा से ज्यादा शक्तिशाली अणुबम बनाने के लिए पता लगाया। एटम बम बनाने का प्रयोजन सिवाए नाश के कुछ हो नहीं सकता । नाश तो जितना किया (जैसे हिरोशिमा) इसके अलावा नाश करने के लिए बार-बार जो प्रयोग किए इससे वातावरण की अधिक क्षति हुई है । ये किया मुट्ठी भर लोगों ने, भोगेंगे 700 करोड़ों । नाश करने के लिए जो किया उससे सामान्य आदमी क्षतिग्रस्त हुआ, कैसे ? गणितीय विधि से 'वर्तमान' शून्य-प्राय: हो जाता है और 'वर्तमान' की तादाद नहीं मिलती है । जबकि है इससे उल्टा, नित्य वर्तमान ही है। वर्तमान के अलावा कुछ होता ही नहीं है । अस्तित्व का सारा वैभव नित्य वर्तमान है जबकि विखंडन विधि से वर्तमान है ही नहीं । इस ढंग से झूठ का पुलिंदा इतना बना चुके हैं कि उससे उभरने के लिए मानव को अपने ऊपर विश्वास करना होगा। जब तक मानव एटम बम पर, तलवार पर, झंडा पर, पत्थर पर विश्वास करेगा तब तक तो आदमी आदमी पर विश्वास करेगा नहीं, यह सच्चाई है और स्वयं पर तब विश्वास होगा जब स्वयं को समझेगा। स्वयं को समझने के लिए हर नर-नारी स्वयं में न्याय, धर्म, सत्य को सटीक समझना होगा

यह जीवन प्रकाशन है । न्याय कहाँ से समझ में आता है संबंध के आधार पर, धर्म कहाँ से आता है व्यवस्था से, सत्य कहाँ से आता है अस्तित्व से । सह-अस्तित्व नित्य प्रभावी है, सह-अस्तित्व के ढंग से । मानव को छोड़कर शेष तीनों अवस्थाओं के संपूर्ण वैभव व्यवस्था में ही हैं।

मानव में भी 'व्यवस्था' में होने की तरस किसी न किसी अंश में निहित ही है। भ्रमित (प्रचलित) पाठ्यपुस्तकों के पढ़ने से व्यवस्था का बोध होता नहीं है । व्यवस्था के बोध के बाद व्यवस्था में जीने के साथ ही मानव, धर्म को निभाने में योग्य हो जाता है । मानव धर्म 'व्यवस्था' में जीना ही है । अस्तित्व में हर वस्तु का व्यवस्था में रहना व्यवस्था में भागीदारी करना ही, धर्म के रूप में दिखता है । पदार्थावस्था का धर्म **अस्तित्व (होना)** है । प्राणावस्था का **धर्म पुष्टि सहित अस्तित्व** है । जीवावस्था का धर्म, **जीने की आशा, पुष्टि सहित अस्तित्व के रूप में प्रकाशित** है । ज्ञानावस्था (मानव) **का धर्म निरंतर, अस्तित्व, पुष्टि, आशा सहित सुखधर्मी होना देखा गया है** । सुख ही मानव धर्म है। सुख कैसे होगा ? समाधान से । समाधान आयेगा व्यवस्था में जीने से। व्यवस्था में जीना मानव की समझदारी पर निर्भर करता है और समझदारी कुल मिलाकर अस्तित्व, जीवन और मानवीयता पूर्ण आचरण के बोध होने को कहते हैं ।

व्यवस्था का बोध होने के बाद व्यवस्था में निष्ठा, संकल्प होना स्वाभाविक है। निष्ठा, संकल्प होने के उपरांत मानव व्यवस्था में जीता है इस प्रकार जीकर हम अच्छी परिस्थिति को निर्मित कर सकते हैं । अतः मानवीय शिक्षा विधि को अपनाना होगा फलस्वरूप सद्बुद्धि उदय होगी । इसके बिना कोई उपाय है नहीं, जो इस धरती को सर्वनाश से बचा सके । इस बात को हमको समझना चाहिए । इसकी जरूरत हैं । नहीं समझने से परिस्थिति बाध्य करेगी समझने के लिए ।

इस तरह धर्म में जीना अर्थात् समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सहज प्रमाण पूर्वक सार्वभौम व्यवस्था में जीना, अखंड समाज व्यवस्था में जीना है । इस विधि से मानव की सार्वभौम व्यवस्था ही मानवत्व होने को मैंने देखा है। **मानव जाति एक, कर्म अनेक; मानव धर्म एक समाधान अनेक ।।** मानव अनेक

प्रकार के कर्म कर सकता है सुखी रहने के लिए । अनेक कर्म का मतलब है अलग-अलग कार्य जैसे कपड़े का काम, मिट्टी का काम, फसल का काम आदि। जब तक मानव, मानव को एक जाति के रूप में पहचानेगा नहीं तब तक मानव के साथ शुभ कार्य किया भी कैसे जा सकता है। मानव के लिए यह स्वाभाविक है कि वह अनेक कार्य करेगा। अनेक कार्य का मतलब उत्पादन कार्य से है । मानव जाति एक होना हम इस तरह स्वीकार करते हैं कि मानव का उद्देश्य एक ही है, वह है सुखी होना। समृद्ध होना, समाधानित होना, अभय होना और निरंतर प्रमाणित करना सह-अस्तित्व को । इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए जो कार्यक्रम बनाते हैं उसका आधार ''मानव जाति, मानव धर्म एक'' पर ही बनता है । सुखी होने का रास्ता जो है उसी का नाम है धर्म (व्यवस्था) । एक देश काल में समझदार होकर व्यवस्था को प्रमाणित कर पाते हैं तो इसे हर देश काल में प्रमाणित कर सकते हैं यही इस प्रस्ताव की खूबी है ।

जय हो, मंगल हो ।

प्रश्न-उत्तर

पुस्तक के इस भाग में जीवन विद्या के जिज्ञासुओं के मन में उठने वाले प्रश्नों में से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों का चयन कर श्रद्धेय बाबा जी से उन प्रश्नों के समाधान चाहे गए। बाबाजी के द्वारा प्रस्तुत समाधान यहां पर दिए गए हैं।

प्रश्न : 1 क्या भौतिक वस्तुओं की कीमत (मूल्य) नहीं है ?

उत्तर - भौतिक वस्तुओं का उपयोगिता मूल्य निश्चित है सौ साल पहले जो एक किलो गेहूँ का उपयोगिता मूल्य था वह आज भी यथावत् है। जब इसमें हमने हस्तक्षेप किया तो मूल्य को कम ही किया (जैसे रासायनिक खाद डाला)। रासायनिक खाद के उपयोग से आदमी आलसी भी हो गया और गोबर खाद बनाना बंद कर दिया और सभी जानवरों को मारकर खा गया। यह बताते हैं कि जानवरों को मारकर विदेश भेजकर हम पैसा कमाते हैं। यह कहाँ तक सच्चाई होगी, कहाँ तक व्यवहारिक होगा, कहाँ तक आदमी के शुभ के अर्थ में होगा, कौन उत्तर देगा ? समृद्धि के लिए भौतिक वस्तुओं का मूल्य आवश्यक है यह मानव के श्रम नियोजन का फलन है। भौतिक वस्तुओं का उपयोग तीन जगह होता है शरीर पोषण, संरक्षण एवं समाज गति के लिए। सम्पूर्ण वस्तुओं का उपयोग करना है इसके बिना मानव को सम्पूर्ण सुख मिल भी नहीं सकता।

प्रश्न : 2 मानव धर्म क्या, मत क्या है ?

उत्तर - सर्व मानव सुखधर्मी है, यह स्पष्ट द सर्वसुलभ ना होने से उसी के लिए अनेक 'मत' है। हम जितना भी व्यवस्था में जीता हूँ, आज जितना खूबी से जीता हूँ कल उससे अधिक जी सकता हूँ उत्तरोत्तर और अधिक सुखपूर्वक जीना ही 'धर्म' है। समस्याओं के साथ सुखी होना बनता नहीं, समझदारी से ही समाधान सम्पन्न होने के आधार पर सुखी होना बनता है। भौतिक वस्तुओं के आधार पर समाधान उपजाएं और फिर सुखी हों ऐसा बनता नहीं। समाधान, समझदारी हमारी जागृति विधि से बुद्धि में निहित है ही। समझदारी के आधार पर भौतिक वस्तुओं को उपजाना बनता है और सदुपयोग करना।

हम समाधानित हों हमारे पास कोई भौतिक वस्तु न रहे ऐसा हो नहीं सकता।

समाधान के साथ भौतिक वस्तु भी अपनी समृद्धि के अर्थ में समाहित रहती है यह परिवार में स्पष्ट है । इस संतुलित विधि से हम सुखी होने का मार्ग प्रशस्त करते हैं । इन्हीं आवश्यकता को धार्मिक आवश्यकता कहते हैं। अभी तक कोई भी संप्रदायगत रूढ़ियाँ न तो सार्वभौम हुई और न आगे होगा। सार्वभौम होना एक ही बात का होगा कि मानव का व्यवस्था में जीना, सर्वशुभ, सुख। मानव व्यवस्था में जीना और समग्र व्यवस्था में भागीदार होना हमको समझ में आता है । हमसे किसी को परेशानी होती नहीं है । इस प्रकार से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि मानव धर्म समाधान पूर्वक सुख है। व्यवस्था के रूप में जीने के फलस्वरूप हम निरंतर समाधानित रहते हैं और निरंतर सुखी रहते हैं। जीवन ही सुखी होता है तो व्यवहार में समाधान प्रमाणित हो जाता है। व्यवहार में प्रमाणित होने के कारण ही यह स्वीकार पाते हैं कि मनुष्य सुखी है।

मानव समाधान सहित स्वभाविक रूप में चाहे काले हों, गोरे हों, बली हों, निर्बली हों, धनी हों, गरीब हों, सभी लोग सुखी होना चाहते हैं इसमें कोई दो मत नहीं है। सुखी होने की प्रक्रिया के बारे में बताया गया अभी तक इन्द्रिय संवेदना में सुख खोजने की बात आदि काल से हुआ किन्तु उससे संभव नहीं हुआ। फलस्वरूप समझदारी के आधार पर सुखी होने की बात अभी स्पष्ट हुई है। मानव स्वयं को और अस्तित्व को समझ ले यही समझदारी है।

अस्तित्व एक शाश्वत सत्य है, न घटता है, न बढ़ता है, इसका क्या प्रमाण है? अभी हमारे सामने जितना भी है वर्तमान है। वर्तमान कभी समाप्त होता नहीं वर्तमान निरंतर बना ही रहता है। इस धरती पर चारों अवस्था रहे या एक अवस्था। न्यूनतम एक अवस्था बना ही रहता है। भौतिक वस्तुएं निरंतर बनी ही रहती है इनका कभी नाश नहीं होता। भौतिक वस्तु ही रासायनिक वस्तु में प्रकाशित होते हैं जिसे रासायनिक उर्मि कहते हैं। दो तरह के वस्तु मिलकर अपना अपना आचरण त्यागकर तीसरे तरह का आचरण बनाना यह रासायनिक उर्मि है। रासायनिक उर्मिवश ही तमाम प्रकार की प्राणावस्था की वस्तुएं निर्मित हुई हैं। रासायनिक वस्तु से प्राण कोशा, प्राण सूत्र, रचना विधि तीनों अपने आप में संपन्न होती है। इसमें संसार के किसी इंजीनियर, डाक्टर, बुद्धिमान आदमी का योगदान नहीं है।

इससे पता लगता है कि अस्तित्व में विकासक्रम की सीढ़ियाँ लगी ही हुई है। मानव भी विकासक्रम में एक सीढ़ी है। ये हम, आपको समझ में आता है। यदि मानव अपने ही क्रमानुसार, क्रियानुसार, विचारानुसार व्यवस्था में जी नहीं पाता है तो मानव के जीने के अनुकूल यह धरती रह नहीं जायेगी तो मानव समाप्त हो जायेगा। किन्तु बाकी यथावत बनी रहेगी भौतिक रासायनिक वस्तुएं वैसी ही रहेगी मानव जाति विदा हो जायेगी। अस्तित्व में कोई हानि लाभ होता नहीं। अर्थात् अस्तित्व न घटता है न बढ़ता है। अस्तित्व में चारों अवस्थाएं निरंतर बना ही रहता है यह अस्तित्व सहज क्रिया है। चारों अवस्थाएं इस धरती पर नहीं होगा तो अन्य धरती पर होगा। अगर मानव इस धरती को मानव के न रहने लायक बनाने को ही विकास समझता है तो इससे अच्छा अक्ल का पत्थर क्या हो सकता है। अधिकतर लोग इस प्रकार के अड़चन पैदा करने वाले मनुष्य, देश, समुदाय को विकसित मानते हैं। इसमें भी सोचने का मुद्दा है। जहाँ हम पहुँचे हैं यह बात तो उजागर हो गयी कि अपने ही करतूतों से हम फंस चुके हैं। फंसने के बाद छूटने की आवश्यकता है। इसका प्रस्ताव आपके सम्मुख आ चुका है। इस पर विचार करने की आवश्यकता है। आपकी सौजन्यता इसका आधार है। मनुष्य स्वयंस्फूर्त विधि से शुभ, अशुभ प्रवृत्तियों में दौड़ता है। शुभ प्रवृत्ति की ओर रास्ता न होने से अशुभ प्रवृत्ति की ओर दौड़ता है। शुभ की ओर दौड़ने का प्रस्ताव है उसे जांचने की जरूरत है, रास्ता पहचानने की आवश्यकता है।

पहला - मानवीय चरित्र एक ही होता है चाहे आदमी कैसा भी हो। मानवीय चरित्र का स्वरूप-स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में होता है।

दूसरा - मूल्य बहते हैं संबंधों की पहचान से। संबंधों की पहचान, मूल्यांकन, उभयतृप्ति मिलने पर मूल्यों का निर्वाह हुआ ऐसा हम समझा हूँ।

तीसरा - तीसरी विधि में हम नैतिक तभी होते हैं जब अपने तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग करते करते हैं, सुरक्षा करते हैं।

इस ढंग से नैतिक मानव, मूल्य मानव, चरित्र मानव यह तीनों मिलकर मानवीय आचरण बनता है। व्यवस्था में जीने के लिए यही तीनों आधार है। यही सूत्र है, परिवार में, समाज में, व्यवस्था में, व्यवसाय में, प्रकृति में सब जगह इस आचरण को व्याख्यायित

करने पर, लागू करने पर मानवीय संविधान हमें करतलगत हुई। मानवीय आचरण ही है जो राष्ट्रीय चरित्र के रूप में वैभवित हो सकता है। विगत में धार्मिक राजनीति, आर्थिक राजनीति के बारे में हम सोच चुके हैं वह भी पराभवित हो चुकी। अपने को कहीं न कहीं विकल्प को खोजना ही पड़ेगा। इसका प्रस्ताव यही है कि राष्ट्रीय चरित्र का आधार बिन्दु मानवीयता पूर्ण आचरण ही होगा। इसको समझने में मनुष्य को किसी भी देश काल में कोई परेशानी नहीं होगी। मानवीयता पूर्ण आचरण सुख एक बार आस्वादन करने की जरूरत है। इस प्रकार मानवीयतापूर्ण आचरण, मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान की हम व्याख्या देते हैं, वही समाजशास्त्र के रूप में हमें प्राप्त हो जाता है। शिक्षा में मानवीयता पूर्ण समाज शास्त्र को लाने की जरूरत है। मानव कैसे समझदार होगा, मानवीयतापूर्ण मानव क्या वैभव है। मानवीयता पूर्ण मानव परिवार में, समाज में, व्यवस्था में कैसे जीता है यह पूरा समाजशास्त्र है इसको अलग से अध्ययन करने की जरूरत है। मनुष्य बहुत अच्छे ढंग से वर्तमान में विश्वास रखते हुए जी पाता है। अस्तित्व न घटता है न बढ़ता है इस रूप में परम सत्य के रूप में अस्तित्व को पहचान सकते हैं। सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही अस्तित्व है।

वर्तमान कभी भी नष्ट होने वाला नहीं है। हम अपनी बुद्धि से वर्तमान से असंतुष्ट है क्योंकि व्यवस्था में जी नहीं पाते फलस्वरूप विगत में जाते हैं जिससे कुंठित हो जाते हैं पीड़ित होते हैं। भविष्य में जाते है कुंठित होते हैं, पीड़ित होते हैं। अस्तित्व में अव्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं है। अस्तित्व संपूर्ण व्यवस्था ही है। मानव जब कोई भी वस्तु बनाता है तो वह बिगड़ता ही है। जैसे यंत्र बनाता है तो बिगड़ता ही है घर बनाता है खराब होता ही है। पर वस्तु का नाश नहीं होता है। इसलिए घर बिगड़ा पुनः बना लिया। हमारे पास श्रम नियोजन के लिए वस्तु है ही। जीवन में अक्षय बल है ही, हमारी अक्षय शक्तियों को शरीर के पोषण संरक्षण और समाजगति के लिए हम नियोजित कर लेते हैं इसे हम कहते हैं समृद्धि। हमारी आवश्यकता दिन में एक बार टेलीफोन करने की है। फोन चौबीस घंटे चालू रहता ही है यही समृद्धि है। हमें दिन में एक बार कहीं जाना है। घर में सायकल दिन भर रखा ही है इसे समृद्धि नहीं तो क्या कहेंगे। खाना एक क्विंटल अनाज है 20

क्विंटल अनाज पैदा कर लेते हैं यही तो समृद्धि है । इन उदाहरणों से पता चलता है कि साधन अधिक है, आवश्यकता कम है । हम सभी आयामों में समृद्धि को अनुभव कर सकते हैं समृद्धि को अनुभव करना एक आवश्यकता है । भौतिक संसार का कोई उपयोग है तो केवल मानव समृद्धि का अनुभव करें । समृद्धि का अनुभव करने का एक ही तरीका है । हम परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर लें । समृद्धि के साथ व्यवस्था में जीने से समाधान की निरंतरता रहती है । समझदारी के उपरांत समाधान के बाद समझदारी नित्य हममें बना ही रहता है । इसके लिए कहीं दौड़ना नहीं पड़ता । यही सुस्वादन का आधार है । जब भी समस्या ध्यान में आता है सुस्वादन करते बनता नहीं । इस प्रकार **समाधान के अर्थ में समझदारी, श्रम के नियोजन के आधार पर समृद्धि तथा सह-अस्तित्व के साथ व्यवस्था में जीने से अभय का अनुभव होता है । इस प्रकार मैंने देखा है, समझा है, जिया है और आपको समझाने में समर्थ हूँ ।**

न्याय = अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में जीने योग्य हो जाते हैं । सत्य = प्रमाणिक होने योग्य हो जाते हैं ।

प्रमाणिक होने का मतलब है हम जो समझे हैं उसे दूसरों को भी समझा सकते हैं । समझदारी के लिए एक मात्र सूत्र है व्यवस्था को समझना है, न्याय को समझना है और मानव को समझना ही है । इस समझने की विधि में मैं सफल व्यक्तियों में से हूँ । अनुभव के फलस्वरूप प्रमाणित होता है । अनुभव क्या है ? हम माने रहते हैं जानते नहीं तो तृप्ति मिलती नहीं है । जाने रहते हैं मानते नहीं है तो भी तृप्ति मिलती नहीं है । जानने, मानने की तृप्ति मिलने पर पहचानने, निर्वाह करने में तृप्ति मिलती है । अभी तक हम पहचानने, निर्वाह करने का क्रम किया, हमें तृप्ति मिला नहीं, क्योंकि जाने माने नहीं रहा । तृप्ति बिन्दु कैसे पहचानेगा ? समझदारी में पारंगत होना ही अनुभव मूलक विधि से चिंतन बोध पूर्वक प्रमाणित हो जाता है उसके साथ साक्षात्कार किया अपने में निरंतर चलना शुरू करते हैं तो इस क्रम में तृप्ति बिन्दु मिल ही जाती है और प्रमाणिकता के साथ तृप्ति बिन्दु मिलता ही है तो प्रमाणिकता स्वयं में प्रमाण है । इस प्रकार अनुभव को संप्रेषित करने में समर्थ हो पाते हैं । फलस्वरूप अनुभव को मानव परंपरा में संप्रेषित, अभिव्यक्त कर अपने में तृप्ति पाते हैं

यही हमारा धन है। जब हम अपने अनुभव को आपको संप्रेषित किया तो हम तृप्त हुआ यही हमारा अनुभव सहज प्रमाण है। यदि आप समझ गये तो यह और भी उत्सव की बात है और आप नहीं समझे तो हमारा तृप्ति हमारे पास रखा ही है। अनुभव को हम नित्य संप्रेषित कर सकते हैं। अभी तक के आदर्शवादी विचार के अनुसार अनुभव को हम बता नहीं सकते। जीवन को पहचानने के आधार पर यह समझे कि जीवन में अनुभव एक अनुस्युत क्रिया है। अनुभव को प्रमाणित करना मानव परंपरा में ही संभव है, जिसमें किसी भौतिक द्रव्य की आवश्यकता नहीं है, केवल समझदारी की आवश्यकता है। जानने मानने की क्रिया जीवनगत है। संवेदना के आधार पर नहीं है इसलिए इसमें भौतिक द्रव्यों की जरूरत नहीं है पहचानने निर्वाह करने की बात आती है व्यवस्था में जीने के स्वरूप में पहचानने, निर्वाह करने के क्रम में हम मानव के साथ होते हैं। अनुभव में शरीर का कोई नियोजन नहीं होता। सीधे-सीधे मन का उत्सव होता है। मन अनुभव से उत्सवित होकर संसार को बता देता है। तो उत्सवित रहने के लिए आत्मा में होने वाला अनुभव ही मूल तत्व है। आत्मा की महिमा ही मुग्ध होने और उत्सव होने की वस्तु रहती है। अनुभव की वस्तु रहती है। फलस्वरूप मन मानव को अर्पित कर देता है। इतना ज्यादा उत्सवित रहता है अतः अर्पित करना ही होता है। हम लोग भी जब बहुत वस्तु प्राप्त कर लेते हैं तो इसको अर्पित करते ही हैं। इसी प्रकार अनुभव इतनी बड़ी संपदा है जिसे मन समा ले, संभलता नहीं है। फलस्वरूप अनुभव को व्यक्त करना शुरू करता है।

ऐसा मैंने देखा है, समझा है, अनुभव किया है। जबकि विगत में बुजुर्ग कहते रहे हैं कि अनुभव को बताया नहीं जा सकता। इसमें किस चीज को माना जाए इसका अध्ययन करना पड़ेगा। मानव की इच्छा से अनुभव को बताया जा सकता है। प्रकाशित किया जा सकता है यही निष्पन्न होता है। घटना के रूप में सम्मुख है।

अनुभव के पश्चात आता है अनुभवों को प्रमाणों के रूप में प्रस्तुत करना। अभी तक प्रमाण के रूप में प्रस्तुत हुआ है यंत्र प्रमाण और पुस्तक प्रमाण। सत्य को प्रमाणित कर चुके ऐसा प्रमाण अभी तक हुआ नहीं। यंत्र प्रमाण परिवर्तनशील है यही सच्चाई है। वैज्ञानिक स्वयं कहते हैं कि यह अंतिम सत्य होगा जरूरी नहीं है। तो **अंतिम सत्य,**

पहला सत्य, मध्य का सत्य, समीप का सत्य, दूर का सत्य इसे कैसे समझा जाए यह बड़ी भारी दुविधा हो गयी। सत्य होता है असत्य होता है। असत्य का मतलब मानव भ्रम में रहता है। असत्य नाम की कोई वस्तु अस्तित्व में बनी ही नहीं। हमारी नासमझी को, भ्रम को, असत्य कह सकते हैं। सत्य का अस्तित्व ही सर्वस्व है सत्य न कभी घटता है न बढ़ता है। पहला सत्य, अंतिम सत्य ऐसा कुछ होता नहीं। केवल निरंतर सत्य ही होता है। या सत्य को हम समझे नहीं रहते यही स्थिति मानव के साथ बनी रहती है। समझदारी के साथ ही सत्य समझ में आता है। सह-अस्तित्व को समझना ही परम सत्य है।

अस्तित्व समझ में आने का फल ही है कि अस्तित्व स्वयं व्यवस्था में है। जब अस्तित्व स्वयं व्यवस्था के रूप में है तो मनुष्य व्यवस्था के रूप में होने के लिए प्रवर्तनशील होना स्वाभाविक है। तब हमें पता लगा मानव धर्म एक ही है व्यवस्था में जीना। मानव धर्म की सार्थकता व्यवस्था में जीना ही है। वर्तमान में विश्वास करना ही, सुखी होना है। किन्तु सुखी होने का जो उपाय भक्ति-विरक्ति में बताया, उसका प्रमाण बनता नहीं है। विरक्ति की अवस्था में साधना के अंत में समाधि अवस्था बनती है। समाधि में हम सुखी हैं कि दुखी हैं ऐसा कहना बनता नहीं है। सत्यापित कर नहीं सकते इसलिए कहते हैं सुख दुख से परे। आप भी अगर समाधि अवस्था को प्राप्त करेंगे तो आप भी यही देखेंगे। समाधि विचार मुक्त अवस्था हैं। इसको मैंने स्वयं देखा है। समाधि की घटना संभावित घटना है। निश्चित घटना नहीं है। किसको कब समाधि होगा यह कोई नहीं बता सकता। कैसे होगा यह भी निश्चयपूर्वक नहीं बताया जा सकता क्योंकि इसके लिए कई विधियाँ है, साधना विधि, आगंतुक विधि, योग विधि, ध्यान विधि, पूजा विधि, जप विधि।

व्यवस्था में जीना शुरू करते हैं तो हमारी भागीदारी व्यवस्था में होती है। शिक्षा संस्कार में भागीदारी करते हैं तो निरंतर उपकार विधि से हम शिक्षा संस्कार संपन्न कर पाते हैं। शिक्षा संस्कार उपकार विधि से ही सार्थक होता है प्रतिफल विधि से सार्थक होता नहीं। प्रतिफल विधि से शिक्षा संस्कार देकर हम सत्य बोध, यथार्थता का बोध नहीं करा पाते हैं।

मैं इस विधि से शिक्षा संस्कार संपन्न करता हूँ। प्रतिफल (भौतिक वस्तु) मिलने का कभी मन में खाका आया ही नहीं। समझदारी को समझाने के लिए भौतिक द्रव्य की आवश्यकता नहीं है। शिक्षा कार्यक्रम में जो अध्यापक है वह अपने में स्वायत्त रहने, स्वालम्बी रहने की आवश्यकता है। समझदारी से यह आता है कि जो मानव स्वायत्त रहेगा उसका स्वावलंबी रहना स्वाभाविक है तो आवश्यकीय वस्तुओं को निर्मित करेगा, समर्थ रहेगा, उपकार करेगा ही। हर मनुष्य में सहयोग, उपकार प्रवृत्ति रहती है। इसका सर्वेक्षण कर सकते हैं यही उपकारवादी विधि की उपज स्थली है। स्वाभाविक रूप में बचपन की सहयोगी प्रवृत्ति को सुदृढ़ करते जायें तो प्रौढ़ावस्था में वह उपकारी हो ही जाता है। इतना ही हमको करना है शिक्षा में ये स्रोत को सार्थक बनाने की आवश्यकता एवं प्रावधान चाहिए जिसे मानवीय शिक्षा ही सार्थक बनायेगा। यांत्रिक शिक्षा एवं व्यवसायी शिक्षा इसे सार्थक बनायेगा नहीं। इस ओर ध्यानाकर्षण होने पर संभव है व्यवहार और व्यवस्था शिक्षा की ओर, प्रमाण शिक्षा की ओर आपकी प्रवृत्ति हो जाए। प्रमाण का आधार मनुष्य को होना है। यांत्रिक शिक्षा से, व्यवसायी शिक्षा से मानव सामाजिक होना तो बनेगा नहीं। इससे मानव के साथ अनाचार अत्याचार हो न हो किन्तु धरती के साथ अनाचार अत्याचार अवश्यंभावी है। यांत्रिक और व्यवसायी शिक्षा से यह धरती बर्बाद हुई है। अतः इसके विकल्प में मानवीय शिक्षा, व्यवहार शिक्षा, समाधान संपन्न शिक्षा, प्रमाण शिक्षा चाहिए। ऐसी शिक्षा के लिए मानवीयतापूर्ण आचरण को मध्य में रखा जाये। मानवीयता पूर्ण आचरण को संरक्षित करने के लिए मानव को समझदार बनाने के लिए संपूर्ण वांङ्मय तैयार किया जाये।

हमने देखा है मनुष्य आवेशात्मक और उत्तेजनात्मक कार्यों को तत्काल कर देता है। जहाँ कहीं भी समाधान, विवेक, प्रयोजनशील कार्य हैं उसे दस बार सोचता है तब करता है। बचपन में ऐसी प्रवृत्ति नहीं होती। बचपन के बाद जैसे-जैसे प्रौढ़ होता है वैसे-वैसे अपने में सहयोगवादी प्रवृत्ति पर शंका होने लगती है और प्राथमिकता क्रम में वह प्रवृत्ति नीचे आती जाती है। फलस्वरूप देर हो जाती है और जो समीचीन परिस्थिति थी वह बदल जाती है। बदले जाने पर और भी शंका होने लगती है और इस प्रकार सही बात हो

ही नहीं सकता इस जगह पर आकर बैठ गया है आदमी। हम सही कर ही नहीं सकते यह निर्णय कर बैठ गया है मानव। दूसरी ओर मनुष्य व्यवस्था को चाहता है। व्यवस्था कैसे सर्वसुलभ हो सकता है लोक व्यापीकृत हो सकता है ? इसके लिए यह प्रस्ताव है। मनुष्य को इसके लिए समझदार होना ही पड़ेगा। मनुष्य अपने में मानवीयतापूर्ण आचरण को हर आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्यों में प्रमाणित करना ही व्यवस्था है इससे समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व फलवती होता है। इन्हीं फलों के लिए मानव चिरकाल से त्रस्त है, प्रतीक्षित है।

अभी मानव ने अपनी आवश्यकता को उपयोगी माना है दूसरे की आवश्यकता को उपयोगी नहीं माना। तभी तो एक आदमी दूसरे आदमी का, एक परिवार दूसरे परिवार का, एक समुदाय दूसरे समुदाय का, एक देश दूसरे देश का शोषण करता है। इन गवाहियों के आधार पर समझ में आता है कि मानव धर्म को, मानवीयतापूर्ण आचरण को हमें समझने पहचानने की आवश्यकता है और इसी शरीर यात्रा में चरितार्थ करने के लिए निष्ठा, साहसिकता जुटाना पड़ेगा। इसे संकल्प कहते हैं जो प्रमाणित होने के लिए निष्ठा जोड़ लेता है। व्यवस्था में जीने की निष्ठा प्रमाणिकता को अभिव्यक्त संप्रेषित करने के लिए निष्ठा। तीसरे जगह में निरंतर न्याय प्रदायी क्षमता को नियोजित करते रहेंगे, न्यायपूर्वक जीते रहेंगे, न्याय के लिए जियेंगे इसकी निष्ठा। इस ढंग से न्याय, धर्म, सत्य के लिए निष्ठा होगी और कहीं तो निष्ठा होते हमने देखा नहीं। पूजा, पाठ, ध्यान में निष्ठा ये सब जिस आवश्यकता के लिए हम करते हैं उसी को बुलंद करता है। उसी को वह वृहद बना देता है। इसके बाद है तीव्र जिज्ञासा। कहा गया है कि सर्वमोक्ष के लिए भी यही सब किया जाता है। इसी को अनादि काल से शुभ कार्य मानते आये हैं। लोक प्रचलन में इसे स्वीकृति दी है, सम्मान दिया है, इससे बहुत लोगों को राहत भी मिलती है। तात्कालिक राहत मिलने मात्र से हम व्यवस्था में जी गये ऐसा होता नहीं।

पूजा, पाठ, ध्यान आदि चीजों पर मुझे अविश्वास है ऐसी बात नहीं है किन्तु उसकी एक सीमा है वहाँ तक ही वह प्रभावशाली है और उसके आगे मोक्ष की जो कामना होती है अंतिम मंजिल समाधि है जिसमें न पाने की बात रहती है न खोने की। इस तरह हम

निष्कर्ष पर आये कि भक्ति विधि से, विरक्ति विधि से, संग्रह विधि से कोई व्यवस्था उपजती नहीं है। तो मनुष्य कैसे जीये ? समाधान , समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व पूर्वक जिया जाये यही मानवीयतापूर्ण जीने की कला का स्वरूप बनता है। इसमें मैं जीकर देखा हूँ यह सार्थक है आप भी जी सकते हैं। हम इस बात पर पहुँच गये कि हर व्यक्ति को इसे जीकर प्रमाणित करना है। सार्थकता सबको स्वीकार है सबको वरेण्य है। तो मानवीयतापूर्ण आचरण मानव जाति के लिए सार्थक है। अस्तित्व में हर एक इकाई व्यवस्था में रहना चाहती है यही उसका धर्म है। मानव भी व्यवस्था में जीना चाहता है। इस आधार पर मानवत्व उसे स्वीकार है। इसको प्रमाणित करना ही हमारा जागृति का प्रमाण है। मानवीयता पूर्ण आचरण को जब मैं प्रमाणित किया तब हमें बोध हुआ कि मानवत्व ही हमारा स्वत्व है। वैभव है और उसकी खुशहाली निरंतर बहने लगी। मैं समझता हूँ कि पूरी मानव जाति भी मानवत्व के लिए तृषित है। मानवत्व मानव का स्वत्व है उसे छोड़कर कहीं भाग नहीं पायेगा आज नहीं तो कल उस जगह पर आना ही पड़ेगा।

मानव परंपरा के लिए हर मानव में इतनी बड़ी संपदा समाहित ही है, संभावना समाहित ही है। प्रमाण हर आदमी की इच्छा, आवश्यकता और उत्सव के आधार पर है। यदि एक व्यक्ति में ही यह गुण आता व्यवस्था का और अन्य व्यक्ति में यांत्रिकता की तरह चलता रहता तो सबमें सुखी होने की इच्छा आवश्यकता नहीं बनती।

कोई न कोई गद्दी पर बैठा रहा है उसे भी सुख, स्वराज्य और स्वतंत्रता नहीं मिला। गद्दी की ओर ताकने वालों को, देखने वालों को भी सुख स्वराज्य नहीं मिला। इस विधि से पता लगता है कि अभी तक हम सभी खाली हाथ हैं। इस रिक्तता को पाटने के लिए हर मानव में चेतना विकास पूर्वक मानवत्व सहित जीना ही विकल्प है। मानव जागृत होने के लिए मानवीय शिक्षा ही विकल्प है। इसका प्रयास हमने किया है, खुशहाली के लिए किया है। किसी का उपकार करने के लिए, एहसान लादने के लिए नहीं किया। हम बोधपूर्वक यानि अनुभव का बोध होने के आधार पर (अनुभव प्रमाणिकता है - प्रमाणिकता का बोध बुद्धि में होता है) बुद्धि का प्रवर्त्तन होता है। उसी का नाम संकल्प है। संकल्प के आधार पर हम अभिव्यक्ति, संप्रेषित होने की इच्छा होती है। प्रमाणित करने की प्रवृत्ति

होती है । हम प्रमाणित कर देखा यह सबके लिए जरूरी है । ऐसा जानते हुए आगे का कार्यक्रम प्रस्तुत करना शुरू किया ।

पहले प्रयास में जीवन विद्या योजना रही जिसमें चिंतन से प्रारंभ कर संकल्प तक जीवन क्रियाओं को स्पष्ट किया । जिसको संकल्प हुआ; उसके अनुसार जीने की कला के लिए स्वभाविक रूप से चित्रण होता है । अब से पहले संवेदनाओं के आधार पर जीने के लिए चित्रण होता रहा है । अब उसके स्थान पर प्रमाणिकता पूर्वक जीने की कला के लिए चित्रण होना प्रारंभ होता है । इसका स्वरूप है उपकार विधि । उपकार विधि से जब हम अपनी सामान्य आकांक्षाओं महत्वाकांक्षाओं को चित्रित करते हैं तो उस समय यही निकलता है कि हम स्वयं स्वायत्त रूप में समाधान समृद्धि को प्रमाणित किये रहते हैं तभी हम उपकार करने योग्य होते हैं ऐसी योग्यता को हम कहीं छुपा नहीं पाते हैं । वह स्वाभाविक रूप से उपकार के लिए नियोजित होती है । इस उपकार विधि से हमारी सामान्य आकांक्षाएं, महत्वाकांक्षाएं सीमित हो जाती है । इस सूत्र में आवर्तनशील अर्थशास्त्र स्वयं समाहित ही है, समीचीन है । मनुष्य उसे समझ सकता है, जागृति के बाद समझ में आता ही है । इस ढंग से आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था के साथ (अर्थ = तन, मन, धन) हम धार्मिकता (धर्मनीति) में (व्यवहार, उत्पादन, व्यवस्था) नियोजित हो जाते हैं। शिक्षा में नियोजित करते ही हैं। इस ढंग से मनुष्य को सभी ओर नियोजित होने का अवसर बना ही रहता है और उन अवसरों को नियोजित करने की विधि स्वयंस्फूर्त आती है ।

आधुनिक परंपरा में पढ़ने लिखने के बाद धीरे-धीरे मनुष्य उत्पादन से विमुख होने लगता है और अधिक से अधिक सुविधा संग्रहण के लिए तृषित रहता है । जबकि जागृति पूर्वक व्यवस्था में मानवीयतापूर्ण विधि से हमारी सामान्य आकांक्षा और महात्वाकांक्षा सीमित हो जाती हैं और थोड़े साधनों से हमारी आवश्यकताएं पूरी हो जाती है ।

वस्तु मूल्य सतत् एक सा बना रहता है जैसे 1 किलो तिल में जो भी मूल्य (उपयोगिता मूल्य) है, वह हमेशा ही बना रहता है । इसी प्रकार औषधि, धान, गेहूँ, वनस्पति में उनका मूल्य बना ही रहता है । उसे उपयोगिता मूल्य कहते हैं । उसके बाद मनुष्य जो उत्पादन करते हैं उसमें सुन्दरता मूल्य जैसे कार बनाते हैं, रेल बनाते हैं उसमें

कला से सुन्दरता जुड़ जाती है। उपयोगिता के साथ सुविधा के अर्थ में सुन्दरता जुड़ती है तो सार्थकता है। इस ढंग से हमारा विश्लेषण का स्वरूप बनता है। हम उपयोगी हो जाते हैं, सार्थक हो जाते हैं, सुन्दर भी हो जाते हैं। **मूल्यों के मुद्दों पर जीवन मूल्य सुख, शांति, संतोष, आनंद के नाम से जाने जाते हैं। जो जीवन की तारतम्यता का ही नाम है। मन और वृत्ति में संगीत होने पर सुख, वृत्ति और चित्त में संगीत होने पर संतोष, चित्त और बुद्धि में संगीत होने पर शक्ति एवं बुद्धि और आत्मा में संगीत होने पर आनंद नाम दिया है। यह कुल मिलाकर जीवन संगीत है।** जब हम अनुभव मूलक पद्धति से जीते हैं तो जीवन संगीत सहज है, स्वाभाविक है। जीवन की सहज अपेक्षा है, जीवन की सहज उपलब्धि, सार्थकता है। आस्वादन में जब मूल्यों का सुख होने लगता है उन मूल्यों में से मानव के साथ प्रेम, विश्वास, स्नेह, कृतज्ञता, वात्सल्य,... ये सब नाम दिया। सार्थकता के साथ संबंध को जब हम पहचानते हैं तो ऐसे मूल्य अपने आप जीवन में से निकलने लगते हैं। इसका उदाहरण जब माँ अपने बच्चे को पहचान लेती है तब ममता अपने आप उमड़ने लगती है। इसके लिए कोई पंचवर्षीय योजना की जरूरत नहीं पड़ती। मूल्य खोजने की या इकट्ठा करने की जरूरत नहीं है। मूल्य जीवन में भरे हैं वह संबंधों को पहचानने से नियोजित होंगे। संबंधों की पहचान परिवार के अर्थ में है, समाज के अर्थ में है, व्यवस्था के अर्थ में है और सह-अस्तित्व के अर्थ में है यह चारों प्रकार से संबंध का खूँटा बना ही हुआ है। हमको पारंगत होने की जरूरत है। जितने हम पारंगत होते हैं उतने ही विशाल रूप में हम अपने को प्रमाण प्रस्तुत करने में, सार्थकता प्रस्तुत करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार मूल्यों का आस्वादन करने लगते हैं। जीवन अपने से निष्पन्न मूल्यों का मूल्यांकन करता ही है। वस्तु मूल्य सब जगह फैला है जबकि जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य हमारे में (जीवन में) ही है और जीवन अपने से इनका मूल्यांकन करता है कितना सहज कार्य है कितना महिमापूर्ण है। इसके लिए कहीं बाहर से संयंत्र लगाने की जरूरत नहीं है। स्वयं को, स्वयं से, स्वयं के लिए ही परीक्षण करने की बात है। इसकी सबको जरूरत है। इसकी संभावना को सर्वसुलभ बनाने में विधि की बात आती है, नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय के मुद्दे पर ही

शिक्षा संस्कार कार्य संपादित होता है। जब यह विधिवत संपादित होता है जीवन जागृत हो जाता है फलस्वरूप संबंधों को पहचानने में समर्थ हो जाता है। संबंधों को प्रयोजनों के अर्थ में पहचानता है फलस्वरूप आदमी सुखी हो जाता है। इस विधि से हम आस्वादन तक पहुँचे। फिर आता है तुलन। प्रिय, हित, लाभ विधि से तुलन जीव जानवर करते हैं मानव की तुलन विधि है न्याय, धर्म, सत्य। ये ध्रुव बिन्दु हैं इसे पकड़ने की, स्वीकारने की आवश्यकता है। जैसे ही इसे हम स्वीकारते हैं तो हमारा प्रयत्न इस दिशा में होता है। अभी तक शिक्षा, संस्कार, मूल्यांकन जो भी मानव ने किया संवेदनाओं के आधार पर किया और पूरा पड़ा नहीं इसलिए परंपरा बनी नहीं। इसलिए तुलन में से प्रिय, हित, लाभ को न्याय, धर्म, सत्य में विलय करने की आवश्यकता है।

अर्थात् न्यायपूर्ण प्रिय, न्यायपूर्ण हित और न्यायपूर्ण समृद्धि। न्याय दृष्टि से लाभ की जगह समृद्धि आ जाती है। न्यायपूर्वक उत्पादन से हम समृद्धि के मंजिल पर पहुँचते हैं और संग्रह विधि से हम शोषण के मंजिल पर पहुँचते हैं। शोषण से हम स्वयं भी क्षतिग्रस्त होते हैं और संसार को भी क्षतिग्रस्त करते हैं। इसे सटीकता पूर्वक अध्ययन करने की आवश्यकता है, स्वीकारने की आवश्यकता है और इस पर दृढ़ संकल्प को स्थापित करने की आवश्यकता है। इसलिए मानवीय शिक्षा की आवश्यकता है। जिससे हर बच्चा स्वायत्त होगा और छः सद्गुणों से पूर्ण होगा :-

1. स्वयं में विश्वास **2.** श्रेष्ठता का सम्मान

3. प्रतिभा में संतुलन **4.** व्यक्तित्व में संतुलन

5. व्यवहार में सामाजिक **6.** व्यवसाय में स्वावलंबी

ऐसा स्वायत्त मानव, परिवार में अपने आप समाधान समृद्धि को प्रमाणित करेगा फलस्वरूप समाज सूत्र और व्यवस्था सूत्र अपने आप से निष्पन्न होता है। व्यवस्था और समाज का उद्गम स्थली है परिवार। इसको मैंने देखा है यह भली प्रकार से सार्थक होता है इसके बाद आता है व्यवस्था का स्वरूप। समझदारी के बाद व्यवस्था अपने आप उद्गमित होता ही है, बहता ही है।

हर अभिभावक अपने बच्चों को सिखाता ही है उसके बाद शिक्षण संस्थाओं में सिखाते हैं फिर राजगद्दी, धर्मगद्दी अपने ढंग से सिखाते हैं। इस शिक्षा से हम जो भी शिक्षा पाये उससे मानव बने नहीं है। अब विचार इतना ही है, प्रयत्न इतना ही है, प्रमाण इतना ही है कि हम मानव बन सकें। मानव परंपरा बन सकें। इससे फायदा होगा नैसर्गिकता का संतुलन और मानव में न्याय स्थापित हो जायेगा। न्यायपूर्वक व्यवस्था में जीना ही है। यह कौन सा बड़ा दुर्गम कार्य है ? किन्तु मानव को इसकी आवश्यकता महसूस होने की जरूरत है। अभी तक जो भी किये हैं संवेदनाओं के आधार पर किये हैं। जिससे हमारी जरूरत पूरी होने वाली नहीं इसी से धरती बर्बाद हो गयी आदमी तो बर्बाद है ही। इसलिए आबाद होना है तो मानवीयता को पहचानना ही होगा। मानवीयतापूर्ण व्यवस्था में जीना होगा और उसकी निरंतरता की संभावना है। वर्तमान में मुद्दा है कि नैसर्गिकता के साथ अपराध रूक जाये। व्यवस्था का स्वरूप है :-

1. शिक्षा - संस्कार में भागीदारी
2. न्याय - सुरक्षा में भागीदारी
3. उत्पादन - कार्य में भागीदारी
4. विनिमय - कोष में भागीदारी
5. स्वास्थ्य - संयम में भागीदारी

इन पाँचो आयामों में भागीदारी ही व्यवस्था में भागीदारी है। यह जागृति के बाद ऐसी व्यवस्था हर आदमी से उद्गमित होती है, हर आदमी में प्रमाणित होती है। इस प्रकार सार संक्षेप में व्यवस्था की प्रस्तुति पूरी हुई। हर बुद्धिमान इसे स्वीकार सकता है।

कोई भी मुद्दा समझ में आते तक शोध, अनुसंधान कहलाता है। शोध या अनुसंधान की हुई वस्तु जब हम प्रमाणित करते हैं तो उसका शिक्षा संस्कार विधि से लोकव्यापीकरण करना आप पहले से ही जानते हैं। लोकव्यापीकरण करना पहला मुद्दा है। लोकव्यापीकरण करते समय जो शिक्षक होते हैं वे अध्ययवसायी विधि से व्यवहारिक, विधि से तर्कसंगत, विवेक विज्ञान, विधि से पारंगत होंगे। पारंगत होने का मतलब अवधारणा से हैं। अवधारणा के पश्चात हर आदमी अपने ही प्रवृत्ति, अपने ही प्रयास, अपने ही आवश्यकता से प्रमाणिक होना बनता है। प्रमाणिक होने की आवश्यकता हर आदमी में समाहित है। जब आपको यह महसूस होगा कि प्रमाणित होना नितांत आवश्यक है तो आप कहाँ चुप

रहेंगे आप भी प्रमाणित होंगे ही। पहले अनुसंधान विधि से हम पाये हैं, मुझसे जो पायेंगे वह होगी अध्ययवसायी विधि। अध्ययन के पश्चात स्वयं की जिम्मेदारी, बोध के पश्चात शुरू होती है। बोध के उपरांत प्रमाणित करना ही होता है। किसी अवधारणा को बोध के बाद प्रमाणित करने को जब उद्धत होते हैं और संसार में संप्रेषित करने के लिए दौड़ते हैं तो हम अनुभूत होते हैं। उसके बाद ही दूसरों को बोध होना बनता है। इस विधि से हर व्यक्ति अनुभवपूर्वक ही दूसरों को बोध करायेगा। बोलने मात्र से बोध होगा नहीं। कुछ बातें हम सुनते हैं फलस्वरूप हमें बोध हो जाता है और हम अनुसंधान में जुट जाते हैं मेरे विधि में भी ऐसे ही हुआ है। किन्तु अधिकांश लोग अध्ययन करेंगे, अनुभव करेंगे और प्रमाणित करेंगे। ऐसा मुझे समझ में आता है।

प्रश्न - पहले से जो प्रचलित परंपराएं हैं और उनमें फँसा हुआ जो आदमी है उनके बारे में आपका नजरिया क्या है ?

उत्तर - देखिए, आपने दो शब्द प्रयोग किए हैं। **1.** परंपरा **2.** सामान्य आदमी। मैंने परंपरा को जो समझा हूँ उसे चार भागों में प्रस्तुत करता हूँ।

1. शिक्षा **2.** धर्मगद्दी **3.** राजगद्दी **4.** व्यापार गद्दी। यही परंपरा के कर्णधार हैं। नौका हैं। इसी में प्रकारान्तर से हर व्यक्ति सफर करता है। मैंने जो देखा है परंपराएं पूर्णतः झरझर हो चुकी है। इसलिए इसमें सफर करने वालों को ये कुछ दे नहीं सकती। परन्तु ये चारों परंपराएं इतना ढींग हांकते हैं कि हम सब कुछ आपको तारने के लिए ही शुरू किये हैं, लगाये हैं। किन्तु तरता हुआ एक आदमी भी नहीं दिखा। बल्कि जो तारने वाला है वह भी उसी में डूबा दिखाई देता है। इस आधार पर मैंने कहा कि परंपराएं सब सड़ चुकी हैं बेकार हो चुकी हैं। सार्थकता का स्रोत है तो मनुष्य। मैंने अध्ययन किया है हर मनुष्य कम से कम 51% से अधिक ही सार्थक है। मनुष्य सुधर सकता है। परंपरा सुधरने के स्थान पर दूसरी परंपरा ही स्थापित होगा। परंपरा सुधरने वाला नहीं, सुधरने की उसमें वस्तु नहीं है।

सार्थक शिक्षा हो, निरर्थक शिक्षा हो, सार्थक राज्य हो निरर्थक राज्य हो; शिक्षा की परंपरा, राज्य की परंपरा तो रहेगी ही। जैसे वर्तमान में राज्य का मूल तत्व है शासन जिसका

आधार है संविधान; जिसका मूल है शक्ति केन्द्रित शासन। जिसका मतलब है गलती को गलती से रोको, युद्ध को युद्ध से रोको, अपराध को अपराध से रोको। इसमें आदमी को क्या होना है रोकने से क्या सुधरेगा। जितना रोकने गये उतना ही अपराध युद्ध बढ़ता गया ये तो सबके सामने हैं। व्यापार का व्यसन तो शोषण से छूटता ही नहीं। धर्म का व्यसन है सबको आश्वासन देना और सम्मान पाना। आश्वासन क्या देना पापी को तारूंगा स्वार्थी को परमार्थी, अज्ञानी को ज्ञानी बनायेंगे। इन आश्वासनों के पूरा होने का कोई प्रमाण तो मिला नहीं। मानव जाति आज तक सोचती रही मैं गलत हूँ परंपराएं सही है। यहाँ से मैं आदमी की आँख खोलना चाहता हूँ परंपराओं की आँखे नहीं। मैं परंपरा से लेन देन नहीं करता हूँ मैं एक आदमी हूँ आदमियों से संबंधित हूँ।

प्रश्न - एक तरफ तो आप परंपराओं को सड़ा हुआ बताते हैं जबकि आदमी उसी परंपरा में पक कर आया है तो आदमी को भी उस परंपरा में पकने की वजह से सड़ा हुआ होना चाहिए। तब भी आप कहते हैं कि आदमी 50% से अधिक सार्थक है। आपके सार्थक होने का क्या तात्पर्य है।

उत्तर - अभी चार परंपरा की बात कही गयी है उसमें बैठे लोगों में सुधार की जिज्ञासा नहीं है। गद्दी परस्तों को और गद्दी के दस्तावेजों में जिज्ञासा का आधार नहीं है। इस आधार पर वह सड़ चुका है। जबकि हर आदमी के किसी कोने में जिज्ञासा उदय रहता ही है इसी आधार पर मैं कहता हूँ कि आदमी 51% से अधिक ठीक है।

प्रश्न - आपने विकास की बातें कहीं है ? अभी तक तो हम गाँव में सड़क बन जाना, बिजली लग जाना, आमदनी का बढ़ जाना को विकास कहते हैं। आपके विकास का क्या अर्थ है ?

उत्तर - चेतना विकास ही मानव में विकास है किन्तु अभी तक तो विकास सड़क बन जाना, इमारत बन जाना को कहते रहे हैं और तो और हर तहसील में जेल बन जाए इसको भी विकास कह रहे हैं। चमका हुआ मकान को विकास कहते हैं। इससे हमारा बहुत बड़ा विरोध नहीं है क्योंकि मनुष्य की सामान्य आकांक्षा महात्वाकांक्षा में जो साधन चाहिए उसके क्रम में ये समाहित होते ही हैं। किन्तु इसको उपयोग करने के क्रम में सामाजिक

चेतना की आवश्यकता है। यांत्रिक चेतना में हम कहीं न कहीं गलती और अपराध में चले जायेंगे। मानव को कहीं न कहीं सामाजिक चेतना, व्यवहारिक चेतना, व्यवस्था की चेतना की आवश्यकता है, विकसित चेतना सहज समझ के क्रम में ही यह जीवन विद्या की बात रखी है। इसके बाद शिक्षा का मानवीयकरण एक प्रस्ताव है उसके पश्चात परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था एक प्रस्ताव है। इन तीनों प्रस्तावों के आधार पर एक नजर डालें तो हम जितना कम से कम धरती को घायल करेंगे उतना ज्यादा दिन हम टिकाऊ होते हैं। धरती को ही बर्बाद करके आदमी कहां रहेगा। इसलिए मनुष्य विकसित हो गया इसका आधार है, मनुष्य परिवार में समाधान और समृद्धि को प्रमाणित कर सके, हर मनुष्य को एक ही जाति का समझ सके, व्यवहार कर सके और मूल्यांकन कर सके अर्थात् सामाजिक हो। व्यवस्था का मतलब पाँचों आयाम में भागीदारी कर सके। इसी को हम मनुष्य का विकास या जागृति कहते हैं। सामाजिक व्यवस्था में व्यवहारिक कहते हैं। अभी तक हमारे विकास के मायने में सुख तो मिला नहीं। निरंतर सुख के लिए समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व चारों पूरा होना चाहिए। इसके बिना सुख मिलेगा नहीं।

प्रश्न - डार्विन ने भी विकास का सिद्धान्त बताया था जो आज भी मान्य है। आपके विकास के सिद्धान्त और डार्विन के विकास में क्या अंतर है।

उत्तर - डार्विन जो भी प्रस्तुत किया शरीर रचना के आधार पर विकास को प्रस्तुत किया। जैसे एक कीड़े की रचना, जोंक की रचना, घोड़े की रचना, गाय की रचना वैसे ही मनुष्य की रचना। इसमें आधार बनाया हड्डियों को। हड्डियां किस प्रकार कितना लंबा, कितना चौड़ा हुआ इसको विकास बताया उन्होंने। मनुष्य के शरीर को ध्रुव मान लिया। मनुष्य के शरीर रचना को आधार बनाया इसके पीछे के शरीर रचनाओं को जोड़ लिए और इसके बाद ये बना है, इसके बाद में ये बना ऐसा वो कहते हैं। डार्विन का शरीर रचना के अर्थ में जो कहना हैं इसमें थोड़ी तकलीफहै, लेकिन मानव के अर्थ में कहना पूरा तकलीफ है। डार्विन के अनुसार बन्दर का क्रमशः रूपान्तरण होते हुए मानव शरीर बना और इसके बीच में भी कई जीव शरीर बने जो बाद में नष्ट हो गये। जबकि हमारे अनुसार किसी न किसी समृद्ध मेधस सम्पन्न जीव के गर्भाशय में, प्राणसूत्र में अनुसंधान का उद्देश्य ऐसे शरीर

रचना की परंपरा को स्थापित करना रहा, जिसके माध्यम से जीवन अपनी जागृति को प्रमाणित कर सके। जबकि डार्विन के अनुसार नैसर्गिकता व वातावरण के दबाव में ये अनिश्चित शरीर रचनाएँ घटित हुई। जीवन ज्ञान डार्विन को था नहीं। जीवन को ध्रुव मानकर उन्होंने कुछ कहा नहीं। जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में ही मानव होता है। अभी भी विकास को खोजते हैं तो शरीर में, हड्डियों में खोजते हैं और उसके लिए नोबेल प्राइज होते हैं, डिग्रियाँ होती है, नौकरियां होती है उनके विकास का ध्रुव है मानव शरीर। तो उनके अनुसार शरीर को तैयार करके मानव बन जाना था वह हुआ नहीं। मानव, शरीर की हड्डियों के दायरे में व्याख्यायित होती नहीं। इसकी गवाही है डार्विन ने खुद ही लिखा है कि मैं स्वयं शरीर के हड्डियों के दायरे में व्याख्यायित नहीं होता हूँ। वह मानव को व्याख्यायित करने में असमर्थ था। रचना विधि में आप श्रेष्ठता को विकास कहते हैं। जबकि विकास का जो ध्रुव बिन्दु है वह जीवन है। जीवन के बिना शरीर कुछ काम नहीं कर सकता। शरीर को जीवित बनाये रखने वाला जीवन ही है। न केवल जीवन के आधार पर, न केवल शरीर के आधार पर, 'मानव' जीवन और शरीर के संयुक्त आधार पर है।

परमाणु में जो विकास है वह गठनपूर्णता के अर्थ में है। हरेक परमाणु गठनशील है। हर गठन में एक से अधिक अंश होता है। हर परमाणु में मध्यांश और उसके चारों ओर चक्कर लगाने वाले अंशों की आवश्यकता है। ऐसा अस्तित्व में स्वाभाविक रूप से होना पाया जाता है। ऐसे परमाणुओं में कम से कम दो से लेकर अनेक संख्या में अंश समाये रहते हैं। अनेक प्रजाति के परमाणु हैं, उसमें से एक प्रजाति का परमाणु हैं जीवन परमाणु। अंशों का घटना-बढ़ना जीवन परमाणु में होता नहीं है इसलिए अक्षय शक्ति, अक्षय बल संपन्न होता है इसे ही परमाणु में विकास कहते हैं। अतः जीवन परमाणु को विकसित कह रहे हैं और विकास के बाद जागृति होती है जागृति का प्रमाण है जानना-मानना, पहचानना, निर्वाह करना परमाणु अंशों में होता है। एक परमाणु अंश दूसरे परमाणु अंश को पहचानता है इसलिए निश्चित दूरी में रहकर व्यवस्था को समीकरण किये हैं। व्यवस्था के रूप में कार्य कर रहे हैं। यही भौतिक रासायनिक क्रियाकलाप के रूप में गण्य होता है। रासायनिक क्रियाकलाप की चर्मोत्कर्ष रचना इस धरती पर मानव के शरीर के रूप में

प्रमाणित है। शरीर को जीवन मान लिया।

प्रश्न - आप दिल्ली में भारत के चीफ जस्टिस वेंकट चलैय्या जी से मिले थे और सार्वभौम न्याय के बारे में उनसे पूछा था जिसका उत्तर उनके पास नहीं था। भारत में न्याय अलग, पाकिस्तान में न्याय अलग। भारत में ही हिन्दु के लिए अलग न्याय और मुस्लिम के लिए अलग न्याय इस तरह न्याय के बारे में बहुत भ्रम है। आपने कहा न्याय परिवार में प्रमाणित होता है जबकि हम सोचते हैं न्याय अदालत में होता है स्पष्ट करें।

उत्तर - सूत्र रूप में कहा गया है ''संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति'' यही न्याय है। संबंध का मूल्यांकन होना, उभयतृप्ति होना बहुत जरूरी है। मनुष्य के साथ जड़ चैतन्य का संबंध रहता ही है। चाहे आप नकारो चाहे स्वीकारो। जैसे हवा के साथ संबंध। नैसर्गिकता के साथ संबंध न रहे, मानव के साथ संबंध न रहे ऐसा कुछ आप बना नहीं सकते। यह सब मानव परिवार में ही मिलता है। जबकि न्यायालय में फैसला होता है, न्याय नहीं।

प्रश्न - आपका सारा प्रतिपादन ही सहअस्तित्व मूलक है। आपने कहा प्रकृति सत्ता में है। इस तरह सहअस्तित्व सर्वस्व है। आप कहते हैं जहाँ कोई इकाई नहीं है वहाँ भी सत्ता है और जहाँ इकाइयाँ ठसाठस भरी है वहाँ भी सत्ता है इसे समझाइये।

उत्तर - व्यापक वस्तु हमको जल्दी समझ में आता है। जिसे खाली स्थान कहें, सत्ता कहें, परमात्मा कहें, ईश्वर कहें। ये क्या चीज हैं। यह मूल वस्तु है, ऊर्जा है। यह ऐसी वस्तु है जिसमें जो भी इकाईयाँ है इससे प्रेरित होने योग्य है। प्रेरित होना कैसे होता है क्या ऊपर से धक्का मारता है ? पहले ऐसा भी कहा गया कि एक शुरू हुआ फिर उसके धक्के से एक-एक करके सब शुरू हो गये। सत्ता में धक्का देने वाली कोई गुण नहीं है। इसमें न तरंग है, न गति, न दबाव है इसलिए धक्का देने वाली बात आती नहीं है। हर वस्तु सत्ता में ऊर्जित है, प्रेरित है यह तो प्रमाण है ही। यह सर्वत्र विद्यमान है ही। हर इकाई व्यापक में डूबे भी हैं, घिरे भी हैं। एक-एक अलग होने का अर्थ ही है कि उनके बीच में सत्ता है।

बीच में सत्ता न हो तो अलग-अलग हो ही नहीं सकते। जुड़ता भी इसलिए है कि बीच में सत्ता है। इस प्रकार रचना विरचना का आधार हो गया और ऊर्जा संपन्नता है ही वस्तु में क्योंकि क्रियाशील हैं ही।

इस वस्तु को पुनः दूसरे ढ़ंग से अध्ययन किया। एक तो इकाईयों के रूप में वस्तुएं दिखती है, उनका आयतन और व्यापक रूप में दिखती है उसका आयतन समान है या भिन्न है ये बात सोचा गया। व्यापक वस्तु का कोई आयतन बनता ही नहीं, सीमा बनता ही नहीं।

भौतिकवाद के अनुसार इकाईयाँ जहाँ रहती है वहाँ व्यापक सत्ता नहीं रहती अर्थात् इकाईयाँ व्यापक वस्तु को हटा देती है। अतः इकाईयाँ व्यापक वस्तु से बलवान (भारी) मानी गयी है। जबकि यर्थाथ में देखा सारी वस्तुएँ शून्याकर्षण में है। धरती, सूरज, सौरमंडल, आकाशगंगाएं सभी शून्याकर्षण में है। शून्याकर्षण स्थिति में है- इससे यह स्पष्ट होता है कि सत्ता और इकाई की परस्परता में भार नहीं है। जबकि इकाईयों की परस्परता में ही भार स्पष्ट होता है। जैसा दो परमाणुओं की परस्परता में अणु बनने की प्रवृत्तिवश भार स्पष्ट होता है। इस प्रकार एक से अधिक अणु निश्चित रचना प्रकृतिवश भार स्पष्ट हो गया है। इकाईयों में एक दूसरे के परस्परता में भार को स्पष्ट करने के क्रम से जिसे हम आकर्षण बल कहते हैं ; वास्तविकता में वह विकासक्रम में भागीदार या समग्र व्यवस्था में भागीदारी के अर्थ में है। जैसे कोई पत्थर धरती के वातावरण में कुछ दूर से छोड़ने पर धरती पर ही आता है वह उस पत्थर में निहित विकासोन्मुखी प्रवृत्ति के आधार पर ही है। इस प्रवृत्ति को प्रकाशित करते समय इसे आकर्षण बल नाम दे दिये है। इन दो प्रमाणों से हमें समझ में आता है कि सभी क्रियाशील है। सत्ता पारगामी है इसका साक्ष्य है प्रत्येक इकाई क्रियाशील है, नियंत्रित है, बल संपन्न है। अस्तित्व में इकाई को कहीं भी स्थित होने पर नियंत्रण, क्रियाशीलता और बल सम्पन्नता यथावत बना ही रहता है यह भी सत्ता के पारगामी होने का साक्ष्य है।

प्रश्न :- सत्ता में अनंत इकाईयाँ डूबी, घिरी, भीगीं है ऐसा आपने कहा। तो वे परस्परता में भी अनंत कोणों से प्रकाशित होती है इसको स्पष्ट कर

दीजिए ।

उत्तर :- इसमें एक सूत्र लिखा है प्रत्येक एक अपने में अनंत कोण सम्पन्न है। अनंत कोण किसी न किसी दिशा में सीधी रेखा में जाता है और उस सीधी रेखा में वो वस्तु प्रतिबिम्बित रहती ही है। कोण जो है कहीं न कहीं जा कर किसी वस्तु पर ही टिकता है। सामने एक वस्तु दिखते तक वो कोण जाता ही रहेगा। तो जहाँ वस्तु मिलता है उसी के ऊपर वस्तु प्रतिबिम्बित रहता है। इस ढंग से वस्तु प्रकाशमान है ये बात का प्रमाण होता है। वस्तु प्रकाशित है इस प्रमाण के साथ हर वस्तु में प्रकाश समाया हुआ है। इस ढंग से प्रत्येक एक में अनंत कोण समायी हुई स्पष्ट होती है वो प्रकाशमानता के अर्थ में ही है। आपका प्रतिबिंब मेरे ऊपर होने के फलस्वरूप आपका प्रकाशमानता हमको समझ में आती है।

प्रश्न :- आज दुनिया व्यापार में रोजगार में यहाँ तक की शिक्षा में भी लाभ कमाने की तरफ दौड़ रही है जिसको आपने लाभोन्माद कहा है। इससे विश्व में जो सामाजिक, आर्थिक, नैसर्गिक समस्यायें उत्पन्न हुई हैं इनका निदान कहां मिलेगा ? यदि लाभ कमाने के चक्कर को दुनिया छोड़ना चाहे तो उसका विकल्प क्या होगा ?

उत्तर :- कोई चीज निष्फल होता है तो सफलता के लिए प्रयास किया जा सकता है। लक्ष्य विहीनता, दिशा विहीनता की स्थिति में जो मानव फंस गया है वह दिशा और लक्ष्य से वंचित तो हो ही गया और उसके कारण उसके योजना और कार्यक्रम में भी निश्चितता नहीं बन पाती। कार्यक्रम की निश्चयता तभी बन पाती है जब लक्ष्य स्थिर हो, दिशा निश्चित हो। इसमें तात्विक रूप में विवेक सम्मत विज्ञान, विज्ञान सम्मत विवेक दोनों का तालमेल एक संगीत के रूप में, एक गति के रूप में हमको मिल जाता है। यही मुख्य बात है। अभी जो लाभोन्माद रूपी अर्थ व्यवस्था का लक्ष्य खोजने जायेंगे तो लक्ष्य केवल संग्रह, सुविधा, भोग, अतिभोग ही है जिसका निश्चयन कभी भी होना ही नहीं है। संग्रह-सुविधा का कोई तृप्ति बिन्दु नहीं है। इस धरती पर रहने वाले 700 करोड़ मनुष्य या कोई भी एक आदमी को संग्रह-सुविधा का तृप्ति बिंदु मिलता नहीं पाये हैं और न पा सकते हैं, न प्रमाणित कर सकते है। यही दिशा विहीनता व लक्ष्य विहीनता का गवाही है। यदि

लक्ष्य और दिशा निश्चित होती है तो हमारा कार्यक्रम भी निश्चित ही होता है। लाभोन्माद इसलिए कहा कि इसमें कभी भी तृप्ति नहीं होना है किन्तु, सदा-सदा के लिए हाय-हाय के साथ जुटे रहना है इसका नाम उन्माद बताया। हाय-हाय के स्वरूप को मैंने देखा है आप भी देख पाते होंगे। हाय-हाय का विस्तार ज्यादा बढ़ता जाता है, कम होता नहीं। तो हाय-हाय के विस्तार को बढ़ाकर हम कौन सा लक्ष्य पा जायेंगे, कहाँ पहुँचकर तृप्ति पायेंगे ? उसके बाद संग्रह-सुविधा हम पा भी जायें तो उसका नियोजन, भोग, बहुभोग, अतिभोग की सीमा में ही हो पाता है और उसका कोई गम्य स्थली है भी नहीं। आज तक भोग से तृप्ति पाना किसी को हुआ नहीं। इन दोनों गवाहियों से हम निष्कर्ष पाये हैं कि ये उन्माद नहीं तो और क्या चीज है। इस प्रकार के उन्माद से 700 करोड़ आदमी उन्मादित होगा इससे छूटाने वाला कौन ? इस प्रश्न को दूर करने के क्रम में ही अनुसंधानपूर्वक प्रत्येक मानव सर्वशुभ सुख चाहते हैं, निश्चय चाहते हैं, निरंतरता चाहते हैं। यही सब मिला करके अनुसंधान की वस्तु है। उसके पक्ष में अर्थव्यवस्था भी एक अंश है। तन, मन, धन रूपी अर्थ होता है। तन भी होगा, मन भी होगा, धन भी होगा इन तीनों में से किसी एक को अलग करके अर्थशास्त्र होता नहीं। जबकि अभी तक पढ़ाये हुए अर्थशास्त्र के अनुसार मुद्रा को अर्थ बताया है। मुद्रा दो प्रकार का बताया (1) धातु मुद्रा (2) पत्र मुद्रा। पत्र मुद्रा किसी छापेखाने में छपता ही है। अब छापने का तकनीकी लोकव्यापीकरण हो चुकी है जिसके कारण नकली नोट छपता ही है। तो वर्तमान अर्थशास्त्र जिसकी कीर्ति गायी जाती है वह पत्र मुद्रा, और धातुमुद्रा का विज्ञान है। धातु मुद्रा, पत्र मुद्रा जितनी भी हमारे पास हो उससे जब वांक्षित वस्तु नहीं मिलती तो उस मुद्रा से न तो प्यास बुझती है न पेट भरता है। इसलिए इसको क्या माना जाए। वस्तु का प्रतीक प्राप्त होने से वस्तु की प्राप्ति होती नहीं। इस तरह से मुद्रा की प्राप्ति को हम वस्तु की प्राप्ति मान बैठे हैं इसी का नाम है पागलपन। इसके निराकरण के लिए मैंने जो प्रस्तुत किया है वह तन, मन, धन रूपी अर्थ है। यहां धन का तात्पर्य सामान्य आकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुओं से है। जिसमें आहार, आवास, अलंकार, दूरदर्शन, दूरगमन, दूरश्रवण संबधी आवश्यक वस्तुएं है। इस तरह से हमारे आवश्यकीय वस्तुओं की उपयोगिता होगी संग्रहण नहीं

होगा। जैसे अनाज पैदा करते हैं एक वर्ष, दो वर्ष, चार वर्ष रखेंगे बाद में रखने पर तो सड़ ही जायेगा। उसी प्रकार कोई यंत्र उपकरण उपयोग न करने से अपने आप जंग पकड़ कर समाप्त हो जायेगा। इस तरह हम जो भी यंत्रों को तैयार करते हैं वे सब उपयोग के लिए रहता है इनको संग्रह किया भी नहीं जा सकता। संग्रह किया जा सकता है तो भी एक सीमा तक। जितना ज्यादा हम संग्रह करने जायेंगे उतना ही ज्यादा कष्टदायक हो जाता है। इसलिए इनकी उपयोगिता अवश्यसंभावी हो जाता है। उपयोगिता के अन्नतर सद्उपयोगिता और प्रयोजनशीलता के लिए सारे वस्तुओं को नियोजित किया जा सकता है। एक बहुत खूबी की बात मैंने देखा है किसी भी वस्तु के उत्पादन करते समय मन का होना जरूरी है, मन के बाद तन का होना जरूरी है। मन और तन के संयोग से ही सारे वस्तुओं का उत्पादन होता है। इस ढ़ंग से हम शायद साफ - साफ एक अवधारणा को स्वीकार सकते हैं कि वस्तु का मतलब है धन और इनका अर्थ है सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तु। इस निर्णय से फायदा क्या होगा मानव जाति का मन उत्पादन की ओर लगने की शुरूआत होती है। अभी तक अर्थशास्त्र का डंका बजा-बजाकर हम मानव जाति (पढ़ा हुआ) के उत्पादन प्रकृति को निरर्थक या बिल्कुल उन्मूलन किये ही रहे हैं। बरबाद किए ही रहते हैं। उसके बाद और कोई स्पेशलाइजेशन की बात करते हैं उसमें उत्पादन कार्य प्रवृत्ति और भी बर्बाद होती ही है। बर्बाद होने के बाद वो एक अच्छा आदमी माना जाता है। **ऐसा अच्छा आदमी बनने के पश्चात् बिना उत्पादन किये उनको सब कुछ चाहिए, सबसे ज्यादा उन्हीं को चाहिए।** इस ढ़ंग से उत्पादन नहीं करने की प्रवृति और सम्पूर्ण वस्तुओं को ज्यादा से ज्यादा पाने की इच्छा ये दोनों मिलकरके संसार के साथ द्रोह, विद्रोह, शोषण होना भावी हो जाता है। इस ढंग से आदमी फंसा है। इससे मुक्ति चाहिए। मैं मुक्ति पाया हूं हमकों किसी का शोषण करने की जरूरत नहीं है, न द्रोह, विद्रोह करने की जरूरत है। परिश्रम से हम स्वयं अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन करते हैं। आप भी कर सकते हैं। आवश्यकता परिवार में ही निश्चित होती है, न कहीं व्यक्ति में न संसार में होती है। परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर लिया तो हम समृद्धि का अनुभव करते हैं। इस ढंग से आर्वतनशील अर्थ

व्यवस्था के अध्ययन की आवश्यकता महसूस हुई। उसको निश्चित रूप में उसकी रचना करके हिन्दी भाषा में संसार को दिया है। वह लोक गम्य हो जाए तो इससे उपकार होगा। इससे कभी भी संसार के किसी भी आदमी, किसी भी परिवार का कहीं भी क्षति होने वाला नहीं है। होगा तो उपकार ही होगा। तो हमें भी शोषण विधि से मुक्त होना है। द्रोह, विद्रोह से मुक्त होना है। जो राजनीति अपने मन से कूटनीति को अपना लिया है उससे कहीं भी अभय, अमन, चैन होने वाला नहीं है। अमन चैन के लिए आर्वतनशील अर्थ व्यवस्था चाहिए। जैसे तन, मन, धन रूपी अर्थ को हम प्राकृतिक ऐश्वर्य पर नियोजित किया तो नियोजन से उत्पादित वस्तु हमारा तन के लिए पोषण, संरक्षण, समाज गति का आधार बनता है। पुन: हमारे इसी समाज गति, पोषण, संरक्षण के आधार पर हम पुन: वस्तु को निर्मित करने योग्य होते हैं, इस तरह से यह आवर्तनशील है। मनुष्य अपनी शक्तियों को विचार शक्ति के साथ शरीर के द्वारा प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन करता है फलस्वरूप वस्तु निर्मित होती है। वस्तु जितना हमको चाहिए उससे ज्यादा हम निर्मित कर ही सकते हैं, हाय-हाय से मुक्त होने की बात यहाँ आती है। हम पहले से ही तृप्त होना चाह रहे हैं, सुखी होना चाह रहे हैं, इसलिए तृप्ति का उपाय खोजते हैं, उपाय खोजते-खोजते तृप्ति का उपाय आता है तो अपनाते ही हैं। इसमें छोड़ने वाली कोई बात नहीं है। गलती को सही में बदलने की बात है, अपराध को न्याय में बदलने की बात है, युद्ध को सहअस्तित्व में बदलने की बात है, द्रोह को सौजन्यता में बदलने की बात है, विद्रोह को मैत्री में बदलने की बात आती है हम ये सब को स्वीकारते ही हैं। 700 करोड़ लोगों से पूछ लीजिए द्रोह, विद्रोह, शोषण, युद्ध करना चाहिए की नहीं। सभी कहेंगे नहीं करना चाहिए। मेरे अनुसार कोई भी आदमी इसके लिए तैयार नहीं होता है कि वह हाय-हाय करता रहे। इस आवर्तनशील अर्थ क्रम से मानव जाति हाय-हाय, द्रोह, विद्रोह, शोषण, युद्ध से मुक्त हो सकता है जैसे पागल, स्वस्थ होने की इच्छा रखता है, वैसे ही आदमी में भी लाभोन्मादी अर्थ व्यवस्था में आर्वतनशील अर्थव्यवस्था की आकांक्षा समायी ही है, समायी हुई बात को जागृत करने की बात है। शुभाकांक्षा हर मनुष्य में समायी ही रहती है उसको जगाने की बात है। जगाने के क्रम में आवर्तनशील अर्थ

व्यवस्था एक अविभाज्य स्वरूप है, इसका मूल सिद्धांत श्रम नियोजन, श्रम विनिमय सिद्धांत है। इसी में हमारा महात्वाकांक्षा, सामान्यकांक्षा से संबंधित वस्तुओं को निर्मित करना है। आवर्तनशील अर्थव्यवस्था होना ही वर्तमान है, प्रकृति सहज है, नियति सहज, सह-अस्तित्व सहज है। इसलिए इसको हमें पूरा अध्ययन करना चाहिए। जीवन में चरितार्थ करना चाहिए और स्वयं संतुष्ट होकर संतुष्टि के स्रोत बनना चाहिए।

प्रश्न - आदमी-आदमी के बीच विसंगति और दुर्गति को देखकर कार्ल मार्क्स ने द्वंदात्मक भौतिकवाद की अवधारणा दी। जिसे साम्यवाद नाम दिया। उसमें ऐसा सपना दिखाया कि मनुष्य-मनुष्य के बीच आर्थिक विषमताओं के चलते उसकी निवृति इस साम्यवाद के द्वारा एक राजनैतिक व्यवस्था के अवतरण से संपन्न हो पाएगी। पिछले 70 वर्षों में 2/3 संसार ने साम्यवाद को स्वीकार किया उसके ऊपर गहरे प्रयोग हुए। उसके वजह से करोड़ों आदमी ने बहुत सी यातनाओं को भी उस स्वर्ग के उतरने की आशा के वशीभूत होकर झेला भी लेकिन अभी हमने देखा कि साम्यवाद सारी धरती पर कम से कम प्रयोगात्मक रूप में तो बहुत बुरी तरह से असफल हो गया। विश्व में इस बात को हम लोगों ने सिद्ध कर दिया कि द्वंद्व जो है वह आदमी के जीने में सुखी होने का आधार नहीं बन सकता। आपके द्वारा हम लोगों ने सुना है व्यवहारात्मक जनवाद; इसके द्वारा आप मानव मानव के बीच खड़ी होने वाली समस्याओं, विसंगतियों को दूर करके समाधान तक पहुँचाया जा सकता है ऐसा आपने बार-बार कहने की कोशिश की है। इसके स्वरूप को स्पष्ट करके समझाइएं।

उत्तर :- द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की परिकल्पना है कि जो कुछ भी काम चल रहा है खींचतान से चल रहा है। इसको व्यवहारिक रूप में ऐसे देखा जा सकता है ; आपके बल का प्रयोग मेरे साथ होता है मेरे बल का प्रयोग आपके साथ होता है इसलिए दोनों का कार्य चलता है ऐसा सोचा जाता रहा। दोनों का विकास होता है अथवा एक का नाश होता है एवं एक का विकास होता है ऐसा सोचा जाता रहा। इसी आधार पर जो बलवान होता है

वही रहने योग्य वस्तु है। बलहीन रहने योग्य वस्तु नहीं है ऐसा द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार माना जाता है। मैंने देखा है अस्तित्व में कोई खींचातानी नहीं है, एक दूसरे का बल संपन्न होने की स्थिति को मैंने देखा है, एक परमाणु अंश भी बल सम्पन्न है, परमाणु भी बल सम्पन्न है, अणु, अणु पिण्ड सभी बल सम्पन्न है। ये एक दूसरे के साथ आदान-प्रदान के रूप में पूरकता विधि को संपन्न करने योग्य हैं, फलस्वरूप विकास है। **अस्तित्व को समझकर के तो ये द्वंद्वात्मक भौतिकवाद लिखा नहीं जा सकता। बुद्धि का सटीक प्रयोग न होने के फल में ही हम ऐसा सब कुछ सोच लेते हैं, हम रहेंगे बाकि सब मिटेगा, हमारा धर्म रहेगा बाकी सभी धर्मों का नाश होगा।** हम धरती पर रहेंगे, राज करेंगे बाकि सबका नाश हो जायेगा। ऐसा हल्ला, दंगा, नारा प्रतिदिन सुनने को मिलता है ये सब शेखचिल्ली की कथाएं हैं। इनसे कोई निश्चित दिशा, लक्ष्य नहीं पायें हैं और ना ही पायेंगे। दिशा एवं लक्ष्य निश्चित होने पर ही निश्चित कार्यक्रम की बारी आती है, ये मैंने देखा है। इसको मैं अध्ययन करता हूं, जो अध्ययन करना चाहते हैं उसको सटीक अध्ययन कराते हैं। ये हमारा प्रतिदिन का कार्य है, इससे हम आप पर कोई बहुत बड़ा अहसान कर रहे हैं ऐसा भी नहीं है हमारा ये काम है, जैसे हवा का काम, अपना करता ही है, पानी अपना काम करता ही है ऐसा ही मेरा काम है अपना काम करता हूँ। मुझमें दृढ़ विश्वास है अभी तक हम जितने दिन जितने क्षण जितना कार्य कर पाया इसी अवधारणा और इसी उद्देश्य को लेकर किया हूँ। इसमें मुझे हर मोड़, मुद्दा, कार्य व्यवहार, हमारा उत्पादन विनिमय हर जगह में आसानी से समाधान मिलता जाता है, इससे मैं सुखी हूँ हमारा परिवार सुखी है। मुझे ऐसा दिखता है हर परिवार सुखी होना चाहता है, हर मनुष्य सुखी, समझदार होना ही चाहता है कोई आदमी मूर्ख होना नहीं चाहता। इसलिए मूर्ख को भी मूर्ख कहने से वह गाली देगा और कहेगा तुम ही मूर्ख हो। इसलिए अस्वीकृत बात किसी को भी स्वीकृत नहीं होती। मूर्खता खिंचतान, द्वंद, द्रोह-विद्रोह, झगड़ा मुझको स्वीकृत नहीं है। भौतिकवादी कहते हैं द्रोह विद्रोह के बिना कुछ हो ही नहीं सकता। इसके बदले में समाधानात्मक भौतिकवाद के नजरिए में जो कुछ भी अस्तित्व में है बल सम्पन्नता है। बल सम्पन्नता का उपयोग है, सदुपयोग है, प्रयोजनशीलता है यह ही जागृत

जीवन में होने वाली स्वाभाविक खूशबु है। विज्ञान सम्मत यदि विवेक हो पाता है यही मुख्य मुद्दा है। विवेक का मतलब है प्रयोजन, तो प्रयोजन विज्ञान सम्मत हो जाए और विवेक सम्मत विज्ञान हो जाए। **विज्ञान सम्मत विवेक का मतलब है जो मानव प्रयोजनों को विश्लेषण करने योग्य हो जाए। यदि प्रयोजन को हम विश्लेषण कर नहीं पाते तब तक हमारा तर्क अधूरा है।** अभी तक विज्ञानवादी नियम यह कहता है कि हम तर्क संगत भौतिकवाद दिए हैं तो पहले तर्क तो यही आता है कि मैं क्या हूँ ? कौन हूँ ? क्यों हूँ ? और हमारी शांति, अशांति, सुख, दुख कैसे निर्मित होते हैं ? इससे हम पीड़ित क्यों होते हैं ? खुशी क्यों होते हैं ? इसका उत्तर विज्ञान से मिलता नहीं है। तो हम झूठ से कोई चीज शुरू करके सच्चाई को नहीं पा सकते। समाधान है, अस्तित्व में नियति है, नियतिक्रम है। नियतिक्रम का अर्थ है समाधान की ओर गतियां। इस बात को समझाने के लिए समाधानात्मक भौतिकवाद में प्रयत्न किया है। इसी के आधार पर व्यवहारात्मक जनवाद की बात है। मनुष्य सुखी होना चाहता है और समाधान = सुख, समस्या = दु:ख। समाधान चाहिए ही चाहिए, समाधान कैसा होगा ? व्यवहार से होगा। कैसे होगा ? संबंध, मूल्य मूल्यांकन और उभयतृप्ति से समाधानित होंगे। यदि हम संबंधों को पहचानते नहीं है तब भी समस्या से ग्रसित रहते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते नहीं संबंधों के अनुरुप तब भी हम समस्या से ग्रसित रहते हैं। ये (संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति) चारों होने पर समाधान होता है। इस ढंग से ये चारों एक दूसरे से जुड़ने पर चार समस्याओं के बदले एक समाधान होता है। आदमी समस्याओं से लद गया है। समस्या भर दिखता है आदमी का तो पता ही नहीं है। इसका गवाही है ये राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक समस्याएं अंत हीन होकर आदमी को ढक दिया है। हर आदमी हर पीढ़ी का समस्या से दब कर कराहते-कराहते अंत हो जाता है। इसके बदले व्यवहारात्मक जनवाद एक ऐसा प्रतिपादन है व्यवहार से मनुष्य समाधानित होता है। व्यवहार हम दो स्थितियों में ही करते हैं एक नैसर्गिक संबंध एवं एक मानव संबंध। नैसर्गिक संबंधों में हम कितने भी व्यवहार करेंगे, नियम, नियंत्रण, संतुलन के अर्थ में करेंगे उससे हम समाधान पाते है नहीं तो समस्या से ग्रसित होते ही है, जैसा अभी ग्रसित हो चुके हैं। हम बिना सुझ-बूझ के कुछ भी

प्रौद्योगिकी कर्म किये हैं, धरती का पेट फाड़ा फलस्वरूप कष्टग्रसत हैं ही। इन समस्याओं के कारण मानव इस धरती पर रहेगा, नहीं रहेगा यह प्रश्न चिन्ह बन ही चुका है ? मेरे देखने के अनुसार हर मानव, हर स्थिति, हर गति में समाधानित हो सकता है यही व्यवहारात्मक जनवाद में प्रतिपादन की बात है। इसका सार बिन्दु यही है संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति। इसी के चलते सर्वतोमुखी समाधान हमें मिलता है। आर्थिक समाधान मिलता है, आवर्तनशील विधि से। सांस्कृतिक विधि मिलता है मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान से। मनुष्य ज्ञानावस्था की इकाई है वह संज्ञानशीलता से ही आपने को प्रमाणित कर पाता है। संबंध होना वर्तमान में विश्वास होना। व्यवस्था में जीना और सह अस्तित्व को प्रमाणित करना। इस ढंग से व्यवहारात्मक जनवाद सर्वतोमुखी समाधान के अर्थ में प्रतिपादित है।

प्रश्न :- फ्रायड ने एक प्रतिपादन प्रस्तुत किया जिसमें उसने आदमी की तमाम इच्छाओं को एक बिन्दु पर केन्द्रित कर दिया, वह है 'काम (सेक्स)'। आज दुनिया में इस विचारधारा को तमाम लोगों ने अघोषित या घोषित रूप से स्वीकार कर लिया है लेकिन हम देखते हैं कि उससे सारी दुनिया में आदमी के बारे में एक स्पष्ट और समाधानकारी चिंतन और परिणाम नहीं मिला। आपने मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान की बात कही है। यह मनोविज्ञान किस तरह से फ्रायड के मनोविज्ञान की जगह लेगा ? इस अवधारणा से कैसे आदमी सुख-शांति को प्राप्त करेगा और समग्र मानव जाति एक सही दिशा को प्राप्त कर सकेगी।

उत्तर :- हर मानव, जीवन और शरीर का संयुक्त रूप है, इस बात को स्पष्ट किया है। जीवन मूल रूप में गठन पूर्ण परमाणु है। परमाणु ही संक्रमित होकर चैतन्य प्रकृति (जीवन) में होता है। तब प्रकृति अपने चैतन्य रूप में वैभवित हो पाती है। गठनपूर्ण परमाणु भारबंधन एवं अणुबंधन से मुक्त रहता है। यही उसका वैभव है। यह सह-अस्तित्व विधि से समृद्ध मेधस-सम्पन्न शरीर को चलाने योग्य हो जाता है। ये दोनों नियतिक्रम में आने वाली विधियाँ है अर्थात् निश्चित रूप में अस्तित्व सहज उपलब्धियाँ

है। मनुष्य में और अन्य जीवों में जीवन का और शरीर का संयुक्त रूप में होना होता है। इसको भली प्रकार से देखा गया है। इसका अध्ययन किया जा सकता है। अध्ययन का केन्द्र बिन्दु यही है कि जीवित रहना, न जीवित होना, जीवन-सम्पन्न रहना, और जीवन रहित रहना यह स्पष्ट होता ही है। इसमें जीवन सम्पन्न रहने का जो प्रमाण है ज्ञानेन्द्रियों के व्यापार से समझ में आता है। जीवन शरीर के द्वारा प्रकाशित नहीं हो पाता है अर्थात ज्ञानेन्द्रियों का कार्य-कलाप जब नहीं हो पाता है तब मर गया कहते हैं। मरने का मतलब शरीर को जीवन छोड़ दिया रहता है। शरीर से जब जीवन अलग हो जाता है उस समय से मृतक हो गया ऐसी घोषणा करते हैं। ऐसे शरीर को हम मनुष्य नहीं कहते हैं। 'जीवन' शरीर को चलाते हुए स्थिति में ही हम मानव कहते हैं। ऐसा हर मानव एक विचारशील इकाई है। जीवों में विचारणा का कोई स्थान नहीं है। जीवों का विचार वंशानुषंगीयता के रूप में ही है। मनुष्य वंशानुषंगीय विधि से जीना चाहे तो भी कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता उससे अधिक दूर दूर तक पहुँचा ही रहता है। जब वंशानुषंगीयता के अर्थात् शरीर के सीमा में यदि हमारा विचार सीमित नहीं हुआ उस स्थिति में हम दूर-दूर तक फैलते ही हैं। इसके कारण हमारा (जीवन का) शरीर सीमा से सीमित रहना नहीं बना। इसके कारण हमारा शरीर सीमा तक विचार कर हम कहीं तृप्त नहीं हुए, समाधानित नहीं हुए। इसका गवाही है न तो हम समाजिक हो पाये और न ही अखण्ड समाज बना। सार्वभौम व्यवस्था को नहीं पाये। कुत्ते की व्यवस्था सार्वभौम है, घोड़े की व्यवस्था सार्वभौम है, हर जीव की व्यवस्था सार्वभौम है, मनुष्य कौन-सा अभागा है जो उसकी व्यवस्था सार्वभौम न बनें ? विचारशीलता हमारा सत्व है आप हम चुप नहीं रह सकते। विचार को चुप करना हमारे अधिकार में नहीं है। अस्तित्व में गधा, घोड़ा, कुत्ता, घास-फूस, पत्थर, लोहा, मणि-मणिक्य सभी का उपयोग है या एक दूसरे के पूरक है। तो मनुष्य होकर के पूरक न हो यह कैसे हो सकता है ? चुप होना याने प्रकृति विरोधी होना, नियति विरोधी होना, विकास विरोधी होना और जागृति विरोधी होना। इस तरह चारों विधी से विरोधी हो गया और विरोध से समस्या पैदा होगा। यही हुआ।

हमारे देश में जितने लोगों ने समाधि के लिये प्रयत्न किया। इन सारे प्रयोग में जब

समाधि की गवाही देने की बारी आती है तो कुछ लोगों ने गोलमोल विधि से गवाही दी भी है। किन्तु मैं समाधि पाया हूँ, समाधि का यही फलन है मैं इसका प्रमाण हूँ ऐसा बोलना बना नहीं। अब उसके बाद अवतारी पुरूष आ गया। अवतार में मनुष्य के जितने भी दस्तावेज है मनुष्य की अंतिम कल्पनाओं के प्रस्तुत करने की कोशिश की। शुभ के लिए ही किया किन्तु सर्वशुभ घटित नहीं हुआ। शुभ का मतलब समाधान, समृद्धि, अभय सहअस्तित्व से प्रमाणित नहीं हुए। अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित नहीं हुई हर मनुष्य समझदार हो गया इस बात का सत्यापन भी हर मनुष्य करने योग्य हुआ भी नहीं। सबको सुख, शांति, संतोष प्राप्त नहीं हुआ इन चीजों को ध्यान में रखकर हम असफलता की बात कह रहे हैं। इसके विपरीत भौतिकवाद ने जो कहा संग्रह-सुविधा उससे भी बात बना नहीं वो भी असफलता के कगार पर आ गया। सफलता की जो बात आती है वो मानव संचेतना से ही आती है। मानव संचेतना कहां रहता है ? जीवन में रहता है, शरीर में नहीं रहता तो आपने जिस फ्रायड नाम के व्यक्ति को कहा उनको जीवन से लेन-देन है ही नहीं।

यदि काम वासना से पीड़ित होना ही जीवन मांगता है यही सच्चाई है तो यह पहले से ही कुत्ते, बिल्ली आदि जीवों में हो चुका है फिर मनुष्य के होने की क्या जरूरत थी नियति क्रम में ? ऐसा पूछा जाए तो मनुष्य के होने का कोई लक्ष्य ही नहीं है यही तर्क निकलता है और भिन्नता क्या है उसमें ? मनुष्य का लक्ष्य सुखी होना है। सुखी होने के लिए समाधान चाहिए। बिना समाधान के एक भी आदमी प्रमाणित नहीं करेगा समृद्धि को। समाधान को छोड़कर हम समृद्ध हो जाएं ये होगा नहीं। इसलिए इस पर अपने को विचार करने की जरूरत है विचार करने पर हमें जो समझ में आया मानव संचेतना की सम्पूर्णता संज्ञानशीलता और सवंदेनशीलता में व्याख्यायित होता है। सज्ञांनशीलता में दो चीज (1) जानना (2) मानना और संवेदनशीलता में दो चीज (1) पहचानना (2) निर्वाह करना होता है। संवेदनशीलता का जितना भी प्रयत्न है प्रवर्तन है वो इन्द्रिय मूलक विधि से होता है। तो इन्द्रिय संवेदना के आधार पर हम जितना भी निर्णय करते हैं वो सामयिक ही होगा। उसमें निरंतरता नहीं होगी। जैसे खाना अच्छा लगता है तो खाते ही रहें, सोना अच्छा

लगता है तो सोते ही रहें, ऐसा होगा नहीं। कहने का मतलब है कि कोई इन्द्रिय व्यापार में ऐसी क्रिया नहीं है जिसको हम सतत् एक सा ले जायें, उसमें बारम्बार बदलाव आवश्यक है। परिवर्तन बिना कोई आदमी निरंतर किसी भी इन्द्रिय व्यापार में लिप्त नहीं हो सकता। यह झंझट क्यों आ गया ? पूछा जाये तो मानव को संज्ञानशीलता की ओर प्रवृति होने के लिए। इसलिए व्यवस्था कितना शुभ है कि **संवेदनशीलता की भंगुरता मानव के जागृत होने के लिए घण्टी है,** मानव जागृति के लिए प्रेरणा है, मानव जागृति के लिए दिशा है। मेरे लिए, आपके लिए। ये कब उद्गमित हो कब आप इसको सत्यापित करेंगे ये आप ही सोचेगें। इसका दायित्व आपका ही है मेरे लिए सब आ गया। ये सब आ गया तो हमारा रोमांचित होना स्वाभाविक है। ये अपने आप में कितना व्यवस्थित बात है। थोड़ा सा विचारशील होने से, आदमी ये विचार कर ही सकता है और उसी के आधार पर हमने जो कुछ प्रयोग किया उससे स्पष्ट हो गया कि संवेदनशीलता भंगुरशील है और हम निरंतर सुख चाहते हैं। संवेदनाओं में संवेदनाओं के योग में हमें सुख भासता भी है पर सुख की अनुभुति नहीं होती। हमारी प्यास सुख की है जो अनुभव के बिना होती नहीं। अनुभव निरंतर होता ही है। अनुभव कहीं भी भंगुर होता नहीं। इस आधार पर सुख की निरंतरता के लिए ये आवश्यक था। संवेदनाओं में भंगुरता सहज है, यही व्यवस्था है। इस आधार पर हम इसका मूल्यांकन कर पाये। उसके बाद संज्ञानशीलता का मतलब निकल गया; जीवन के सभी क्रियाकलाप अनुभव मूलक विधि से अनुप्राणित होना। मानव संचेतना यही है यहीं जागृत संचेतना है। जिसको मैंने स्वयं अनुभव किया। मैं आपको अध्ययन कराता हूं। ये अध्ययन मूलक विधि से ही आयेगी। इसको बार-बार पठन-पाठन से बोध के लिए सहायक हो सकता है। जीवन समझ में आ गया मानव संचेतना का आधार बन गया। मानवीयता पूर्ण आचरण समझ में आ गया तो परंपरा बन गया। परम्परा के लिए मानव मानवीय व्यवहार को, मानवीयता पूर्ण आचरण को समझे बिना मानव परम्परा होने वाला नहीं है। मानवीय आचरण ही एक ऐसा वस्तु है जो कि सर्व देश-काल में एक सा ही है। मूल्य, चरित्र, नैतिकता का संयुक्त स्वरूप आचरण है। चरित्र को बताया स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष तथा दयापूर्ण कार्य व्यवहार। तन, मन, धन का सदुपयोग व सुरक्षा करना

नैतिकता है। संबंधों में मूल्यांकन करना और फलस्वरूप उभयतृप्ति होना ही मूल्य है। **जीवन लक्ष्य सुखी होना है, मानव लक्ष्य है समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व।** लक्ष्य के लिए हम हर जगह से नैतिकता को जोड़ते हैं, नैतिकता इसी अर्थों में सार्थक होता है, इसी अर्थ में प्रायोजित हो पाते हैं। मूल्य विधि भी ऐसे ही है और चरित्र विधि में यही है। दुष्चरित्रता में दुखी होते हैं, अनैतिकता में दुखी होते हैं, मूल्यों का अनादर पर दुखी होते हैं। इस तरह से मूल्य, नैतिकता, चरित्र को निर्वाह करना ही मानवीय आचरण है, स्वभाव है। ऐसे आचरण के लिए किस चीज की आवश्यकता थी ? वह अस्तित्व, जीवन एवं मानवीयतापूर्ण आचरण के ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान क्या है ? जानना, मानना ही ज्ञान है। जानने, मानने के बाद ही तृप्ति बिंदु को तलाशने की बात बनती है। जब जानते नहीं, मानते नहीं तो तृप्ति बिन्दु काहे को तलाशेंगे ? कहां तलाशेंगे ? जैसे हम दिल्ली को जानते, मानते है तो दिल्ली जाने का कार्यक्रम बनाते हैं। अगर हम दिल्ली को जानते, मानते ही नहीं तो जाने का कार्यक्रम कैसे बनायेंगे ? चन्द्रमा को होना मान लिया और चन्द्रमा पर पहुंच भी गये। जानने एवं मानने के तृप्ति बिंदु के लिए बहुत कुछ करते हैं। तो मुख्य रूप से करने की बात यही है अस्तित्व समझ में आने से सह अस्तित्व समझ में आता है ; सह अस्तित्व समझ में आने के फलस्वरुप मानवीयता पूर्ण आचरण आता ही है, निष्पन्न होता ही है। मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान में इन सबकी पुष्टि है। एक बात और है जीवन में मैंने 122 क्रियाकलापों को देखा है। इन 122 क्रियाकलापों में से मन में कितना क्रियाकलाप होता है वृत्ति में कितना, बुद्धि में कितना, आत्मा में कितना होता है इसको स्पष्ट करने की कोशिश की है। इसका क्या प्रयोजन ? इससे यह प्रयोजन है एक के बाद एक जो सुनने में आया और समझ में आया तो तृप्ति बिंदु के लिए अनुभव करना बन ही जाता है, उसे दूसरों को बोध कराने की अर्हता आती है। दूसरों को बोध के बाद ही हमारी संपदा का प्रमाण है। हम दूसरों को समझाते हैं तो हमारी समझदारी का प्रमाण है। हम निरोगी है तो दूसरों को निरोगी बनाने में हमारा धन प्रमाणित होता है। हम धनी हैं दूसरों को धनी बना दें तभी हमारे धनी होने का प्रमाण होता है। इस ढ़ंग से सरलता से सामाजिक होने की रीति आती है। अभी तक मनुष्य संवेदनशीलता में

ही जीता रहा है इसलिए संग्रह, सुविधा, द्रोह-विद्रोह, शोषण की बात आती रही है। इस ढ़ंग से मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान का मूल रूप स्पष्ट होता है वह मूलत: जीवन की क्रिया ही है जानने के लिए मानना हुआ तो जानने के आधार पर प्रवर्तित होते हैं और पहचानने व निर्वाह करने के क्रम में हम अपने आप से न्यायिक हो जाते है, नियंत्रित हो जाते है, संतुलित हो जाते है, सुखी हो जाते है। ये ही कुल मिलाकर मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान का प्रयोजन है।

प्रश्न : बाबा जी आज धरती पर हजारों चिकित्सा पद्धतियाँ है, इतने मानवों का श्रम उसमें लगा है इतना धन नियोजित होने के बाद भी मानव जाति का स्वास्थ आज भी बिगड़ा हुआ है । जितना धन लगाया जा रहा है, जितने यंत्रों का अनुसंधान किया जा रहा है उसके बावजूद भी रोगों की संख्या बढ़ती जा रही है । नये-नये रोग पैदा होते जा रहे हैं। पुरानी पद्धति से भी जैसा दावा किया जाता है वैसी उपलब्धि नहीं होती और आधुनिक पद्धतियों से भी जो बात कही जाती है वो प्रमाणित नहीं होती । इस संबध में आप जीवन विद्या से स्वास्थ्य-संयम के आधार पर कैसे स्वास्थ्य को पहचानना चाहेंगे ।

उत्तर :- आपने जो बोला यह प्रश्न कम ज्यादा सभी का है । इतना सब प्रयत्न विशेषज्ञता के लिए है। जबकि विशेषज्ञता एक भूत है, पिशाच की तरह है। वो सबको मार देता है। हम विशेषज्ञ है इसलिए हम जो कहते हैं वह सही है ऐसा मान लेने केआधार पर सर्वाधिक अपराध हुआ। उसमें सबसे ज्यादा अपराध उन्हीं के ऊपर हुआ जो रोगी थे। रोगी जब अपनी तकलीफों को सुनाने लगता है तो डाक्टर सुनना नहीं चाहते, वे रोगी को मशीन से सुनना चाहते हैं, मशीन से मनुष्य के दर्द को पहचानना होता नहीं। कुल मिलाकर मनुष्य ही मनुष्य के दर्द को सुन सकता है, पहचान सकता है यह बात यंत्रों से होता नहीं और हम रोग को पहचान नहीं पाते है। पहले जो कुछ लोग आयुर्वेद विधि से, यूनानी विधि से और विधियों से नाड़ी ज्ञान के आधार पर तकलीफों को पहचानने की कोशिश किये वह सराहनीय है। वे नाड़ियों के द्वारा, नाड़ी के गति के द्वारा, दबाव के द्वारा, प्रवाह के द्वारा, खिचांव के द्वारा, तनाव के द्वारा जो रोग को पहचानने की कोशिश की है वह

सराहनीय है। शनैः शनैः कालान्तर में, यंत्र को देखकर उसकी (नाड़ी परीक्षण की) कठिनता को स्वीकार करते हुए, आदमी यंत्र की ओर दौड़ लिया। अब सब लोग यंत्र से ही बीमारी और दर्द सुनना चाहते है। यंत्र के आधार पर हम कुछ भी निर्णय लेते हैं रोगी तृप्त होता नहीं और रोग के मूल स्वरूप से चिकित्सक दूर ही रह जाता है। उसके लिए युक्ति, अनुसंधान, शोध करने की बात आती है। उसमें चूक हो ही जाती है क्योंकि अनुकूलता, प्रतिकूलता को जो शोध करना चाहिए वह बीमार के साथ वह चीज होता नहीं है। सारी विशेषज्ञता संग्रह सुविधा में फंस गयी। मरीज को देखकर दवाई लिखने का पचास रू. से लेकर दो हजार रू. तक लेते हैं। मैंने देखा है पचास रू. लेकर जो दवाई लिखता है वही दवाई दो हजार रू. लेकर बड़े शहर का विशेषज्ञ लिखता है। यहाँ हमने इस बात को ध्यान दिलाया कि मनुष्य कैसा पागल हो गया है। ज्यादा पैसे लेने वाला ज्यादा अच्छा चिकित्सक है ऐसा सोचता है, तो उस सीमा से अधिक उसमें अपेक्षा हो नहीं सकती। तीसरी बात, हम चिकित्सा में समग्रता के साथ कभी सोचे नहीं अर्थात चिकित्सक बनने की सोचे ही नहीं, ऐसा प्रयत्न ही नहीं किया। चिकित्सा समग्रता का मतलब पहले स्वास्थ अथवा निरोग के बलाबल को पहचाना जाए। रोग के बलाबल को कैसा पहचानेंगे ? नाड़ी से पहचानेंगे। नाड़ी में क्या पहचानेंगे ? नाड़ी में ये बतायेंगे नाड़ी की गतियों की पहचान कर रोगों का साक्षात्कार करेंगे और लक्षणों से मिलाकर निश्चय करेंगे कि ये ही रोग है। उसका हम चिकित्सा करते हैं सफल होता है तो हमारा समझना सही माना जाए और यदि असफल होता है तो हमारा समझना गलत है। फिर यह शोध की बात बनता है। अभी की स्थिति में देखने को मिलता है जो जैसा चिकित्सा करता है अपने को सही मानता है। सफल हो या असफल हो हम सही चिकित्सा दिये हैं यही मानता है। इसके कारण हम प्राणसंकट में फंस गए। तो पहले रोग को पहचानना, रोग के बलाबल को पहचानना, औषधियों को पहचानना, औषधियों के बलाबल को पहचानना, उनके योग-संयोग को पहचानना, उनके अनुपान प्रयोग को पहचानना, रोगी की मानसिकता को पहचानाना, उसके पथ्य परहेज को पहचानना, नियम-संयम को पहचानना, फिर उपचार को पहचानना, ये सब एकत्रित होने से समग्र चिकित्सा है। औषधि योग से सम्पूर्ण

चिकित्सा हो सकता है। मणि चिकित्सा किरण-विकिरण की ही बात करता है, मंत्र चिकित्सा अपने मानसिक तरंग के ऊपर ज्यादा प्रभाव डालता है। केवल औषधि ही अधिक से अधिक रस क्रियाओं के साथ घुल करके रस परिवर्तन लाने के काम में आता है। रोगों को कैसे दूर करना है शरीर व्यवस्था जितना जानता है उतना कोई डॉक्टर नहीं जानता है। **शरीर को ठीक करने की ट्रेनिंग व्यवस्था शरीर व्यवस्था में निहित है।** डॉक्टर तो शरीर के साथ जबरदस्ती करते हैं। चिकित्सक को क्या करना चाहिए ? शरीर व्यवस्था को बलवती बनाने के लिए शरीर अवस्था के अनुकूल रस-द्रव्यों को शरीर को देना चाहिए। यही चिकित्सक की खूबी है, यही महिमा है, यही उनका विवेक-विज्ञान है। ऐसी चिकित्सा से हम पार पा सकते हैं। अत: चिकित्सा को विशेषज्ञता से निकालकर लोकव्यापी बनाना चाहिये।

स्वास्थ्य का मतलब शरीर से होता है। संयम का मतलब मन से होता है। जो न्याय होता है, नियमित होता है, नियम के आधार पर होता है, नियंत्रण के आधार पर होता है, संतुलन के आधार पर होता है। यही संयम है। अत: संतुलनपूर्वक, न्यायपूर्वक होने वाली मानसिकता को संयम कहते हैं। उसकी क्या दवाई है ? उसके लिये क्या किया जाये ? उसके लिए समझदारी दवाई है। नासमझी से असंतुलन, मानसिक असंतुलन, समझदारी से संतुलन बहुत साधारण सूत्र है। समझदारी के अर्थ में संपूर्ण व्यवस्था है, संतुलन है।

हरिहर

पूर्वजों–प्रेरकों के प्रति वन्दना

वन्दना उनकी करें, जिनसे सुशोभित है धरा ।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा ।।

जिनसे दिशा हमको मिली, नित मानवीय मार्ग की ।
पथ मिला निश्चित हमें थी, कामना जिस मार्ग की ।।

कृतज्ञता से सौम्यता की, नित्य आयी निरन्तरा ।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा ।।

जिनका है चिन्तन शुभ यही, कैसे हो मानव सुखमयी ?
प्रेरणा से जिनकी है, मानव का जीवन सुखमयी ।।

श्रद्धा समर्पित जिनसे आये, मानवीय परम्परा ।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा ।।

सबके सुख की कामना ले, रहती जिनकी प्रेरणा ।
निकली जिनसे मानवीय पथ, हेतु निश्चित योजना ।।

पूज्यता उन हेतु जिनसे, हो सुसज्जित हो वसुन्धरा ।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा ।।

प्रदीप 'पूरक'
गोविन्दपुर, बिजनौर

ग्रंथ

''अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन''
बनाम
''मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद''

दर्शन (मध्यस्थ दर्शन)

★ मानव व्यवहार दर्शन

★ मानव कर्म दर्शन

★ मानव अभ्यास दर्शन

★ मानव अनुभव दर्शन

वाद (सहअस्तित्ववाद)

★ व्यवहारात्मक जनवाद

★ समाधानात्मक भौतिकवाद

★ अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

शास्त्र (अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन)

★ व्यवहारवादी समाजशास्त्र

★ आवर्तनशील अर्थचिंतन

★ मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

संविधान

★ मानवीय आचार संहिता रूपी मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

परिभाषा

★ परिभाषा संहिता

अन्य

★ विकल्प

★ अध्ययन बिंदु

★ आरोग्य शतक

★ जीवन विद्या योजना

★ मानव संचेतनावादी शिक्षा-संस्कार योजना

★ परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना

:: मध्यस्थ दर्शन आधारित उपयोगी संकलन ::

परिचयात्मक संकलन

★ जीवन विद्या एक परिचय

सहयोगी संकलन

★ संवाद - भाग-1

★ संवाद - भाग-2

पुस्तक प्राप्ति संपर्क एवं निःशुल्क PDF डाउनलोड के लिए :-

Website : www.madhyasth-darshan.info
Email. : books@madhyasth-darshan.info